UNIVERSAL LIBRARY
OU_180516
UNIVERSAL LIBRARY

सरस्वती-सिरीज़ नं० ४८

बहूरानी की हाट

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सर्वोदय साहित्य [illegible]
हुसैनीअलम रोड, हैदराबाद [illegible]

प्रकाशक
इंडियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग

१९०-१९६५

सरस्वती-सिरीज़

स्थायी परामर्शदाता—डा० भगवानदास, पण्डित अमरनाथ झा, भाई परमानंद, डा० प्राणनाथ विद्यालङ्कार, श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार, पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र, संत निहालसिंह, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, बाबू संपूर्णानन्द, श्री बाबूराव विष्णुपराड़कर, पण्डित केदारनाथ भट्ट, व्योहार राजेन्द्रसिंह, श्री पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी, श्री जैनेन्द्र कुमार, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, पण्डित क्षेत्रेश चटर्जी, डा० ईश्वरीप्रसाद, डा० रमाशंकर त्रिपाठी, डा० परमात्माशरण, डा० बेनीप्रसाद, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, पण्डित रामनारायण मिश्र, श्री संतराम, पण्डित रामचन्द्र शर्मा, श्री महेशप्रसाद मौलवी फ़ाज़िल, श्री रायकृष्णदास, बाबू गोपालराम गहमरी, श्री उपेन्द्रनाथ "अश्क", डा० ताराचंद, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश, श्री अनुकूलचन्द्र मुकर्जी, रायसाहब पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, पण्डित सुमित्रानन्दन पंत, पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पण्डित मोहनलाल महतो, श्रीमती महादेवी वर्मा, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, बाबू रामचन्द्र टंडन, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र, बाबू कालिदास कपूर, इत्यादि, इत्यादि।

Checked 1969

विश्व-उपन्यास

बहूरानी की हाट

'बहू ठाकुरानीर हाट' का अनुवाद।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press Ltd., Allahabad

पहला परिच्छेद

बहुत रात गई है। गरमी की ऋतु है। हवा बन्द है। पेड़ का एक पत्ता तक नहीं हिलता। यशोहर के महाराज प्रतापादित्य के ज्येष्ठ पुत्र युवराज उदयादित्य अपने सोने के कमरे में खिड़की के पास बैठे हैं। पास ही उनकी स्त्री सुरमा बैठी है।

सुरमा ने कहा—क्या कीजिएगा; सह लीजिए; धीरज धरकर रहिए; कभी सुख के दिन आयेंगे ही।

उदयादित्य—मैं और कुछ नहीं चाहता। केवल यह चाहता हूँ कि यदि मैं यशोहर के राजभवन में जन्म लेकर युवराज न होता, उनका प्रथम पुत्र होकर उनके राजसिंहासन का—उनके सारे धन, सम्पत्ति, मान-मर्यादा, यश, प्रताप और महत्त्व का—एकमात्र उत्तराधिकारी न होता, बल्कि उनकी छोटी से भी छोटी प्रजा के घर जन्म लेता तो मैं अपने को बहुत सुखी मानता। क्या कोई ऐसी तपस्या है, जिसके करने से मेरी इच्छा पूरी हो?

सुरमा ने अधीर होकर युवराज के दाहिने हाथ को अपने हाथों में लेकर दबा लिया और उनके मुँह की ओर देखकर धीरे-धीरे लम्बी साँस ली। युवराज की इच्छा पूरी करने के लिए वह प्राण तक दे सकती है, किन्तु प्राण देकर भी वह उनकी इस इच्छा को पूरी नहीं कर सकती। यही उसको दुःख है।

युवराज ने कहा—सुरमा, मैंने राजा के घर में जन्म तो लिया, पर मैं सुखी न हुआ। राजभवन के सभी लोग समझते हैं कि

मैंने उत्तराधिकारी होकर जन्म-ग्रहण किया है, सन्तान होकर नहीं। महाराज बचपन से ही मुझ पर कड़ी निगाह रखते हैं। मैं उनके यश और प्रतिष्ठा को स्थिर रख सकूँगा या नहीं, अपने वंश के महत्त्व की रक्षा कर सकूँगा या नहीं, राज्य का गुरुतर भार उठा सकूँगा या नहीं, इन बातों का उन्हें सदा सन्देह बना रहता है। मेरे हर एक काम को, मेरी चाल-ढाल को वे परीक्ष की दृष्टि से देखा करते हैं, स्नेह की दृष्टि से नहीं। मेरे सम्बन्धी लोग, मन्त्री, दरबार के सभ्य और प्रजा सभी मेरे स्वभाव और कामों को देखकर मेरे भविष्य की गणना कर चुके। सबों ने सिर हिलाकर कहा—मेरे द्वारा इस कठिन राज्य की रक्षा न हो सकेगी। मैं मूख हूँ। मैं भला-बुरा कुछ नहीं समझता।" धीरे-धीरे वे लोग मेरी अवज्ञा करने लगे। पिता मुझ पर अविश्वास करने लगे। उन्होंने एकदम मेरी आशा त्याग दी। अब तो वे भूलकर भी मेरा स्मरण नहीं करते; मेरी कुछ खोज-ख़बर तक नहीं लेते।

सुरमा की आँखों में आँसू भर आये। उसने जी मसोसकर कहा—"ओफ़! कोई कैसे सह सकता है?" उसे बड़ा दुःख हुआ और कुछ क्रोध भी। उसने फिर कहा—जो लोग आपको मूर्ख कहते हैं, वे ही मूर्ख हैं।

उदयादित्य ज़रा हँसे। उन्होंने सुरमा की ठोढ़ी पर हाथ लगाया और उसके रोषान्वित रक्तिमापूर्ण मुँह को हिलाकर कहा—नहीं सुरमा, सचमुच मुझमें राज्यशासन की बुद्धि नहीं है। इस बात की कई बार परीक्षा हो चुकी है। मैं जब सोलह वर्ष का था तब महाराज ने काम सिखलाने के अभिप्राय से हुसेनखाली परगने का भार मुझे सौंपा था। छः महीने भी बीतने न पाये कि भारी गड़बड़ मच गई। रुपया जितना चाहिए, वसूल न हुआ। प्रजा आशीर्वाद देने लगी, पर नौकर मेरे विरुद्ध राजा के कान

भरने लगे। राजदरबार के सब लोगों ने यही निश्चय किया कि युवराज जब प्रजा का इतना पक्ष लेते हैं तब, जान पड़ता है, उनसे राज्य का काम न हो सकेगा। तब से महाराज मुझे और भी हेय समझने लगे। अब तो वे प्रायः मेरी ओर देखते तक नहीं। कहते हैं, वह कुलाङ्गार ठीक रायगढ़ के चचा वसन्तराय के सदृश होगा; सितार बजाकर नाचता फिरेगा और राज्य को रसातल में पहुँचा देगा।

सुरमा ने फिर वही बात कही—प्रियतम, सह लीजिए। धीरज धरकर रहिए। चाहे हज़ार बुरे हों, पर हैं तो बाप ही। आज-कल राज्य-वृद्धि की एकमात्र दुराशा उनके हृदय में छा रही है। स्नेह के लिए हृदय में जगह नहीं। जितनी ही उनकी आशा पूरी होगी उतना ही उनके स्नेह का राज्य बढ़ेगा।

युवराज ने कहा—सुरमा, तुम बुद्धिमती हो, दूरदर्शिनी हो, इसमें सन्देह नहीं; पर इस विषय में तुम भूलती हो। प्रथम तो आशा को अवधि ही नहीं, दूसरी बात यह है कि पिता के राज्य की सीमा जितनी ही बढ़ेगी, जितना ही वे अधिक राज्य प्राप्त करेंगे उतना ही उसके अरक्षित होने का भय उनके मन में बढ़ेगा। राजकाज जितना ही भारी होगा, उतना ही वे मुझको अयोग्य समझेंगे।

सुरमा की समझ में कोई भूल न थी, पर तो भी उसने अपनी भूल मान ली। विश्वास बुद्धि को भी लाँघकर पार हो जाता है, वह किसी तरह विश्वास करने लगी। मानो उदयादित्य की ही कही हुई बात ठीक है।

उदयादित्य कहने लगे—मैं यहाँ लोगों की कृपादृष्टि और अपमानसूचक दृष्टि न सहकर कभी-कभी चुपचाप रायगढ़ के दादा साहब के पास जाता था, पिताजी मेरी कुछ विशेष चिन्ता नहीं करते थे; मेरे लिए यह अच्छा परिवर्तन था। वहाँ भाँति

भाँति के बाग़ देखने में आते, गाँववालों के घर आता-जाता; दिन-रात राजसी लिबास में नहीं रहना पड़ता था। इसके सिवा जिस जगह दादाजी रहते हैं, उस जगह शोक-विषाद का नाम नहीं, मानों वहाँ से दुःख, शोक तीन सीमाओं के पार भाग जाते हैं। गाने-बजाने के हर्ष से वे चारों दिशाओं को भरपूर किये रहते हैं। उनके आस-पास चारों ओर आनन्द, उमङ्ग, मैत्री और शान्ति छाई हुई रहती है। वहाँ जाने ही से मैं भूल जाता हूँ कि मैं यशोहर का युवराज हूँ। एक बात और याद आई, वह क्या सहज में भूल सकती है? जब मेरी उम्र अट्ठारह वर्ष की थी तब मैं रायगढ़ में दादाजी के पास था। वसन्ती हवा बह रही थी, चारों ओर हरित कुञ्जवन की शोभा फैल रही थी, कोयल और पपीहे जहाँ-तहाँ फूले हुए आम के पेड़ों पर बोल रहे थे। उस वसन्त ऋतु में, उसी कुञ्जवन में, मैंने रुक्मिणी को देखा।

सुरमा—यह बात मैं कई बार सुन चुकी हूँ।

उदयादित्य—एक बार और सुनो; कोई-कोई बात ऐसी होती है जो कभी-कभी चित्त में बड़ी चोट पहुँचाती है। यदि उन बातों को निकाल बाहर न करूँ तो उस चोट से कलेजा फट जाय। यह बात तुमसे कहने में अब भी लज्जा और कष्ट होता है, इस कारण तुमसे बार-बार कहता हूँ। जिस दिन लज्जा न होगी, कष्ट न होगा, उस दिन समझूँगा कि मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो गया। उस दिन कुछ न कहूँगा।

सुरमा—प्राणनाथ! प्रायश्चित्त कैसा? यदि आपने पाप किया तो वह पाप का दोष है, आपका नहीं। मैं क्या आपके हृदय को नहीं जानती? अन्तर्यामी भगवान् क्या आपके पवित्र हृदय का भाव नहीं समझते हैं?

उदयादित्य कहने लगे—रुक्मिणी मुझसे तीन वर्ष बड़ी थी। वह विधवा थी और अकेली थी। दादाजी की दया से वह राय-

गढ़ में सुख से समय बिता रही थी। याद नहीं है, पहले-पहल किस चतुराई से फँसाकर वह मुझे ले गई। उस समय मेरे मन में मध्याह्न-काल की लू चल रही थी। इतना प्रखर तेज था कि भला-बुरा कुछ भी नहीं दिखाई देता था। मानों उस समय मेरे लिए चारों ओर यह संसार तेजोमय भाप से ढका था। शरीर का ख़ून दिमाग़ पर चढ़ आया था। रास्ता, बेरास्ता, ऊँच, नीच, पूरब और पच्छिम सब मेरी आँखों के सामने एक आकार धारण किये थे। इसके पहले मेरे मन की ऐसी अवस्था कभी न हुई थी और न उसके बाद ही फिर कभी वैसी हुई। न मालूम, भगवान् ने क्यों इस दुर्बल हृदय को एक दिन के लिए उस तरह उत्तेजित कर दिया था, मानों एक ही पल में सारा जगत् इस दुर्बल हृदय को खींचकर कुमार्ग में ले गया। हा भगवान्! मैंने क्या अपराध किया था जो उस पाप से एक ही घड़ी में तुमने मेरे जीवन की सारी स्वच्छता काली कर दी। क्षण भर में ही दिन को रात बना डाला। मानों मेरे हृदय की फुलवारी में खिले हुए मालती और जूही के फूल भी लज्जा से काले हो गये।

उदयादित्य आगे कुछ न बोल सके। उनका मुँह पीला पड़ गया, आँखें झेंप गईं। मानों उनके सिर से पैर तक बिजली का तार दौड़ गया। सुरमा ज़रा अनखाकर बोली—आपको मेरे सिर की शपथ है, इस बात को रहने दीजिए।

थोड़ी देर तक उदयादित्य चुप रहे। उसके बाद वे फिर कहने लगे—क्या कहूँ, जब चित्त का वेग शान्त हुआ, जब सब पदार्थ पूर्ववत् दिखाई देने लगे, जब मैंने संसार को स्वप्न का एक दृश्य न मानकर प्रकृति का कार्य्य-स्थल माना तब मेरे मन की जो अवस्था हुई वह तुमसे क्या कहूँ। कहाँ से कहाँ आ गया! सौ, हज़ार, लाख कोस दूर पाताल के घोर गढ़े में मानो पलक मारते-मारते एकदम गिर गया। दादाजी मुझे बुलाकर ले गये। उन्हें मैं

क्योंकर मुँह दिखलाता? सच पूछो तो तभी से मुझे रायगढ़ छोड़ना पड़ा। परन्तु दादाजी बिना मुझसे मिले कब रह सकते हैं? मुझे बार-बार बुलाते हैं, किन्तु मुझे इतना संकोच होता है कि मैं वहाँ किसी तरह जाना नहीं चाहता। दादाजी के बुलाने पर भी जब मैं उनके पास नहीं जाता तब वे स्वयं मुझको और विभा को देखने यहाँ आते हैं। उन्हें किसी तरह की ईर्ष्या नहीं, ग्लानि नहीं, कुछ नहीं। वे कभी मुझसे यह भी नहीं पूछते कि रायगढ़ क्यों नहीं आते? वे हम लोगों को देखकर बहुत ही प्रसन्न होते हैं। इसी से वे कभी-कभी यहाँ आते हैं और दो एक दिन रहकर फिर चले जाते हैं।

उदयादित्य ने मुसकुराकर अपने विशाल नेत्रों में अत्यन्त सरस कोमल प्रेम भरकर सुरमा के मुँह की ओर देखा।

सुरमा ने मन ही मन कहा—"देखू, अबकी बार क्या बात निकलती है।" उसने ज़रा सिर झुका लिया। उसका चित्त कुछ चञ्चल हो पड़ा। युवराज ने अपने दोनों हाथ उसके गालों पर रखकर बड़ी कोमलता से, नीचे की ओर झुके हुए, उसके मुँह को ऊपर उठाया। वे उसके बिलकुल ही पास जा बैठे। उन्होंने धीरे-धीरे उसके माथे को अपने कन्धे पर रख लिया, फिर प्रेमालिङ्गन-पूर्वक कहा—"उसके बाद क्या हुआ? यह मैं तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता हूँ। प्यारी! तेरा यह बुद्धि से चमकता हुआ, यह शान्तिभाव से भरा हुआ, हास्यविकसित कोमल प्रेममय प्रसन्न मुँह कहाँ से उदित हुआ! मेरे उस गहरे अन्धकार का नाश होने की क्या आशा थी? मेरी उषा तुम्हीं हो, मेरी प्रभा तुम्हीं हो और आशा भी तुम्हीं हो। तुम न होती तो मैं उसी प्रकार घोर अन्धकार में पड़ा रहता। किस मन्त्रबल से तुमने बात की बात में मेरे उस अन्धकार को दूर कर दिया।" युवराज ने बार-बार सुरमा का मुँह चूमकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

सुरमा कुछ न बोली। उसकी आँखों में आनन्द के आँसू उमड़ आये।

युवराज ने कहा—इतने दिनों के बाद मैंने यथार्थ में अपने जीवन का सहारा पाया। तुम्हारे मुँह से सुना कि मैं मूर्ख नहीं हूँ। आज मैंने इस पर विश्वास किया। मैंने तुमसे सीखा कि बुद्धि अन्धकारमय छोटी गली की तरह टेढ़ी-मेढ़ी संकीर्ण या ऊँची नीची नहीं है। यह राजमार्ग की तरह सीधी, समतल और ख़ूब लम्बी चौड़ी है। पहले मैं अपने ऊपर घृणा करता था, आप ही अपनी अवज्ञा करता था, किसी काम के करने में मेरा उत्साह नहीं होता था। मैं सर्वदा साहसहीन कायर सा बना रहता था। मेरा मन जिसे सत्य मानता था, उसे संशयात्मिका बुद्धि असत्य कहकर मुझे भटकाती थी। मेरे साथ जो जिस तरह का व्यवहार करता मैं उसे सह लेता था, ख़ुद भला-बुरा विचारने का प्रयत्न नहीं करता था। इतने दिनों के बाद आज मैंने जाना कि मैं भी कुछ हूँ। मैं बिलकुल मिट्टी का पुतला नहीं हूँ। इतने दिन मानों मैं गढ़े में छिपा था। तुम मुझे बाहर प्रकाश में लाई हो। सुरमा, तुमने मुझे नवीन रूप में परिवर्तित किया है। अब मेरा मन जिसे अच्छा समझेगा, उसे मैं अवश्य करूँगा। मेरा तुम पर अटल विश्वास है। जब तुम मुझे विश्वास दिलाती हो तब मैं अपने ऊपर निःशङ्क भाव से विश्वास क्यों न करूँ! तुमने इस मक्खन से कोमल शरीर में इतना बल कहाँ पाया जो मुझे ऐसा बलिष्ठ बना डाला?

सुरमा अपने असीम निर्भर भाव से स्वामी को दोनों भुजाओं से आवेष्टित करके उनकी छाती से लिपट गई। वह सम्पूर्ण आत्मत्याग की दृष्टि से उनके मुँह की ओर देखने लगी। उसकी अनुराग भरी आँखों ने साफ़-साफ़ कह दिया—मेरे और कोई नहीं, केवल तुम्हीं एक हो। इसी से सब कुछ है।

बचपन से ही उदयादित्य अपने सम्बन्धियों से अपमानित होते आते हैं। इसी से किसी-किसी निःशब्द रात को सुरमा के पास वही सैकड़ों बार की कही हुई अपनी रामकहानी सुनाकर अपने दिल का बोझ हलका करते हैं।

उदयादित्य ने कहा—सुरमा, इस तरह और कितने दिन चलेंगे? इधर राजदरबार में सभासद्गण मुझ पर एक प्रकार की विलक्षण कृपादृष्टि रखते हैं। उधर अन्दर महलों में माँ तुम्हारी खबर लेती है। नौकर-नौकरनी तक तुम्हारा कुछ सम्मान नहीं करतीं। मुझे किसी को कुछ कहने का साहस नहीं होता। इसी से चुप रहता हूँ। सब सहे जाता हूँ। सुरमा, तुम्हारा स्वभाव कुछ उग्र है, पर तुम भी चुपचाप सब सह लिया करो। जब तुमको मैं सुख न दे सका, जब मेरे सम्बन्ध से तुमको केवल अपमान और कष्ट ही सहना पड़ा तब मेरे साथ तुम्हारा विवाह न होना ही अच्छा था।

सुरमा—प्राणनाथ, आप यह क्या कह रहे हैं! मेरे लिए यही समय उपयुक्त है। मैं सुख के समय आपकी कौन-सी सेवा कर सकती? सुख के समय में सुरमा एकमात्र विलास की वस्तु थी, एक तरह का खिलौना थी। इन सब दुःखों को पार करके मेरे मन में यह सुख जाग रहा है कि आप मुझे किसी तरह अपने दुःख का सहारा समझ रहे हैं। आपके लिए दुःख सहने में मुझे जो अतुल आनन्द है, उस आनन्द का मैं उपभोग कर रही हूँ। यदि मुझे कुछ खेद है तो इतना ही कि मैं आपके समस्त कष्टों को अपने ऊपर क्यों नहीं ले सकी?

युवराज कुछ देर तक सुरमा के मुँह की ओर देखते रहे, फिर बोले—प्यारी, मैं अपने लिए कुछ परवा नहीं करता। मेरे लिए सब सह्य है। मेरे लिए तुम क्यों कष्ट सहोगी? सच्ची स्त्री को पति के साथ जैसा बर्ताव रखना उचित है, वैसा ही तुम मेरे साथ

रखती हो। मुझे किसी तरह का कष्ट न हो, इसका ध्यान तुम्हें सदा रहता है। मेरे मन में जब खेद होता है तब तुम आश्वासन देकर मुझे शान्त करती हो। पर मैं तुम्हारा स्वामी होकर तुम्हें अपमान या ग्लानि के दुःख से नहीं बचा सका, तुम्हें कोई सुख न दे सका। तुम्हारे पिता श्रीपुराधीश मेरे पिता की अधीनता स्वीकार नहीं करते और न अपने को यशोहर की छत्र-छाया में समझते हैं, इससे रुष्ट होकर पिताजी उसके बदले तुम्हारी अवहेला करके ही अपने महत्त्व को रखना चाहते हैं। कोई तुम्हारा अपमान क्यों न करे, पर वे उस पर तनिक ध्यान नहीं देते। वे समझते हैं कि उन्होंने जो तुम्हें पुत्रवधू बनाकर अपने घर में जगह दी, यही तुम्हारे लिए बहुत है। जब ये बातें बरदाश्त नहीं होतीं तब कभी-कभी जी चाहता है कि सब छोड़-छाड़कर सिर्फ़ तुम्हें साथ लेकर कहीं चल दूँ। अब तक तो मैं कभी का चला गया होता, पर तुम्हीं ने मुझे रोक रक्खा है।

रात बहुत हो गई। साँझ के तारागण कितने ही अस्त हो गये हैं और गम्भीर रात के कितने ही तारे उदित हुए हैं। क़िले के फाटक पर पहरेदारों के चलने की आहट कुछ-कुछ सुनाई दे रही है। सारा संसार निद्रादेवी की गोद में विश्राम ले रहा है। शहर की रोशनी बिलकुल बुत गई है। सभी के घर के द्वार बन्द हैं। दो-एक गीदड़ों के सिवा प्रायः एक भी प्राणी बाहर घूमता दिखाई नहीं देता। उदयादित्य के सोने के कमरे का द्वार बन्द था। एकाएक बाहर से किसी ने किवाड़ खटखटाये। उदयादित्य ने झट जाकर द्वार खोला, देखा, उनकी बहन विभा खड़ी है। पूछा—क्या है विभा? क्या हुआ? इस समय यहाँ क्यों आई हो?

विभा ने कहा—जान पड़ता है, सर्वनाश हुआ! सुरमा और उदयादित्य एक साथ पूछने लगे—क्यों, क्या हुआ? काँपती हुई

विभा ने चुपके से कुछ कहा। कहते-कहते वह अपने को सँभाल न सकी। बीच ही में रोकर बोली--भैया! क्या होगा?

उदयादित्य ने कहा--रोओ मत। मैं अभी जाता हूँ।

विभा ने कहा--नहीं, तुम मत जाओ।

उदयादित्य--क्यों विभा?

विभा--तुम्हारे जाने का हाल मालूम हो जाने पर शायद पिता तुम्हारे ऊपर क्रोध करें।

सुरमा ने कहा--यह समय ऐसा सोचने का नहीं है।

उदयादित्य पोशाक पहनकर और कमर में तलवार बाँधकर जाने के लिए तैयार हो गये। विभा ने उनका हाथ पकड़कर कहा--भैया, तुम मत जाओ। किसी आदमी को भेज दो। मेरा जो घबराता है।

"घबराने की कोई बात नहीं है। अभी मेरे जाने में बाधा मत दो। अब वक्त नहीं है।" यह कहकर उदयादित्य तुरन्त अपने कमरे से बाहर हो गये।

विभा ने सुरमा का हाथ पकड़कर कहा--भाभी, अगर पिताजी सुन पावें तब?

सुरमा ने कहा--तब और क्या होगा? हम लोगों पर उनका कुछ स्नेहभाव थोड़ा ही है। अगर कुछ है भी तो वह न रहेगा, इतना ही न। इसके लिए कोई कहाँ तक डरे?

विभा ने कहा--नहीं भाभी, मुझे बड़ा डर लगता है। अगर किसी तरह का दण्ड ही दें तो?

सुरमा ने लम्बी साँस लेकर कहा--मुझे पूरा विश्वास है कि संसार में जिसका कोई रक्षक नहीं उसकी रक्षा भगवान् करते हैं। प्रभो! तुम अपने नाम को कलङ्कित न होने देना। तुम पर जो मेरा अटल विश्वास है, उसको भङ्ग न करना।

दूसरा परिच्छेद

मन्त्री ने पूछा—क्या वह काम करना उचित होगा ?

प्रतापादित्य—कौन सा काम ?

मन्त्री—कल जिसके करने की आज्ञा दी गई है।

प्रतापादित्य (क्रोध से)—कल क्या करने की आज्ञा दी गई है ?

मन्त्री—चचा साहब के सम्बन्ध में।

प्रतापादित्य और भी क्रुद्ध होकर बोले—चचा के सम्बन्ध में क्या ?

मन्त्री—महाराज ने आज्ञा दी थी—"यशोहर आते समय जब वसन्तराय सिमलतली की चट्टी में ठहरें तब—"

प्रतापादित्य ने भौं सिकोड़कर कहा—तब क्या ? बात को पूरी कर डालो।

मन्त्री—तब दो पठान जाकर—

प्रतापादित्य—हाँ।

मन्त्री—उन्हें मार डालें।

प्रतापादित्य अत्यन्त रुष्ट होकर बोले—सुनो दीवान, तुम लड़के की तरह क्यों बातें करते हो ? एक बात का उत्तर सुनने के लिए दस बातें क्यों पूछते हो ? काम की बात पूछते क्या तुम्हें शरम मालूम होती है ? जान पड़ता है, राज-काज में योग देने की अवस्था तुम्हारी बीत चली, अब चौथेपन की चिन्ता का समय आया है। अब तक अपने पद-त्याग के लिए तुम प्रार्थना क्यों नहीं करते थे ?

मन्त्री—महाराज मेरे अभिप्राय को ध्यान से नहीं देखते ?

प्रतापादित्य—हम बहुत ध्यान से देखते हैं। हम तुम्हारे अभिप्राय को अच्छी तरह समझते हैं। अच्छा, हम एक बात पूछते हैं। हम जो कोई काम करना चाहते हैं उसे क्या तुम ज़बान पर भी नहीं ला सकते? तुमको हमारे उस काम पर विचार करना उचित था। जब हम वह काम करने चले हैं तब तुमको समझना चाहिए कि उसका कोई भारी सबब ज़रूर है। हमने धर्म-अधर्म का विचार कर लिया है।

मन्त्री—महाराज मैं तो—

प्रतापादित्य—ठहरो, पहले हमारी पूरी बात भली भाँति सुन लो। हम जब इस काम पर—अर्थात् अपने चचा को मारने पर—उद्यत हुए हैं, तब तुम्हारी अपेक्षा हमने इस विषय में अवश्य बहुत सोच-विचार कर लिया है। तुम पाप की बात सोचते होगे, पर इस काम में पाप नहीं। यवनों ने इस पवित्र भारत देश में आकर घोर अत्याचार आरम्भ कर दिया है। उनके अत्याचार से हमारे देश का सनातनधर्म लुप्त होने पर है, राजपूत लोग मुसलमान को लड़की देने लगे हैं, हिन्दुओं के आचार दिन दिन भ्रष्ट हो रहे हैं। "हम इन म्लेच्छों को दूर भगाकर सनातनधर्म को पुनरुज्जीवित करेंगे।" हमारी इस प्रतिज्ञा के रक्षार्थ विशेष बल की आवश्यकता है। हम चाहते हैं कि समस्त वङ्ग देश के राजा-महाराजा हमारी आज्ञा के वशवर्ती होकर काम करें। जो लोग यवनों के मित्र हैं उन्हें बिना यमपुर पहुँचाये मेरा यह उद्देश्य सिद्ध न होगा। चचा वसन्तराय मेरे पूज्य हैं, किन्तु सच बोलने में पाप नहीं; वे हमारे वंश के कलङ्क हैं। उन्होंने म्लेच्छ का दास होना स्वीकार किया है। ऐसे लोगों के साथ प्रतापादित्य कोई सम्पर्क रखना नहीं चाहते। व्रण होने से लोग अपनी बाँह भी काटकर फेंक देते हैं। मेरी इच्छा है कि वंश के कलङ्क तथा वङ्ग देश के व्रणस्वरूप वसन्तराय को काटकर राजवंश की रक्षा करूँ और वङ्गदेश को भी बचाऊ।

मन्त्री ने कहा—इस विषय में तो महाराज के साथ मेरा कोई मत-भेद न था।

प्रतापादित्य ने कहा—था क्यों नहीं। सच्ची बात कहो। अब भी है। देखा दीवान, जब तक मेरी राय के साथ तुम्हारी राय न मिले तब तक बराबर अपनी राय ज़ाहिर किया करो। यदि इतना साहस न हो तो तुम मन्त्रित्व के अधिकारी नहीं। यदि किसी तरह का सन्देह हो तो मुझसे कहो, मुझे विचारने का मौक़ा दो। तुम यह समझ रहे हो कि चचा को मारना सदा सर्वदा पाप है। कहो, तुम्हारे मन में यही बात जमी हुई है न। सुनो, जब बाप के अनुरोध से परशुराम ने अपनी माँ को मार डाला था, तब धर्म के अनुरोध से क्या मैं अपने चचा को नहीं मार सकता?

इस विषय में अर्थात् धर्म-अधर्म के विषय में यथार्थ ही मन्त्री का कोई मतभेद न था। मन्त्री का ख़याल जहाँ तक पहुँचा था, राजा वहाँ तक नहीं पहुँच सके थे। मन्त्री भली भाँति जानता था कि उपस्थित विषय में यदि वह सङ्कोच दिखलायेगा तो उससे राजा तत्काल रुष्ट होंगे सही, किन्तु पीछे परिणाम की बात सोचकर मन ही मन प्रसन्न होंगे। ऐसा न करने से मन्त्री के ऊपर किसी समय राजा का सन्देह उत्पन्न होना सम्भव था।

मन्त्री ने कहा—मेरे कहने का मतलब यह था कि दिल्ली के बादशाह इस ख़बर को सुनकर नाराज़ होंगे।

प्रतापादित्य मारे क्रोध के जल उठे। वे बोले—हाँ, हाँ, नाराज़ होंगे! वे भले ही नाराज़ हों, नाराज़ होने का अधिकार सभी को है। दिल्लीपति हमारे ईश्वर नहीं हैं। उनके नाराज़ होने से ऐसे अनेक जीव हैं जो डर से काँप उठें। मानसिंह है, वीरबल हैं, हम लोगों के कुल-कमल वसन्तराय हैं और अब देख रहे हैं तुम भी हो; पर तुम लोग अपने ही बराबर सबको मत समझो।

मन्त्री ने ज़रा हँसकर कहा—जी हाँ, सूखे क्रोधमात्र से तो यह ताबेदार भी नहीं डरता, किन्तु उस क्रोध के साथ-साथ यदि ढाल-तलवार भी हो तब तो कुछ भय ज़रूर करना होगा। दिल्लीपति को रुष्ट करने के लिए कम से कम पचास हज़ार सेना का संग्रह तो पहले ज़रूर कर लेना चाहिए।

प्रतापादित्य इसका कोई ठीक उत्तर न दे सके, ज़रा ठहरकर बोले—दीवान, दिल्लीश्वर का डर दिखलाकर मुझे किसी काम में हतोत्साह करने की चेष्टा न करो। मैं उसमें अपनी अप्रतिष्ठा समझता हूँ।

मन्त्री—यह सुनकर प्रजा क्या कहेगी?

प्रतापादित्य—सुनेगी तब तो।

मन्त्री—यह बात बहुत दिन तक छिपी न रहेगी। इस बात के फैलने से सारा वङ्गदेश आपका विरोधी हो जायगा। जिस अभिप्राय से आप यह काम करना चाहते हैं, वह जड़ समेत नष्ट हो जायगा। आप जातिच्युत होंगे और अनेक प्रकार की आपत्तियाँ उठायेंगे।

प्रतापादित्य—देखो, मन्त्री, फिर तुमसे कहे देता हूँ। मैं जो काम करता हूँ, उसे भली भाँति सोचकर करता हूँ। अतएव जब मैं किसी काम में प्रवृत्त होऊँ तब तुम झूठमठ कई तरह के भय दिखाकर मुझे निरुत्साह करने का प्रयत्न न किया करो। मैं बालक नहीं हूँ। पग-पग में बाधा देने के लिए मैंने तुमको अपनी ज़ञ्जीर बनाकर नहीं रक्खा है।

मन्त्री चुप हो रहे। उन पर राजा की दो विशेष आज्ञाएँ थीं। एक यह कि जब तक मतभेद हो तब तक वे बराबर अपनी राय ज़ाहिर किया करें। दूसरी यह कि अपना विरुद्ध मत प्रकाश करके उन्हें किसी काम से हतोत्साह करने की चेष्टा न करें। म

आज तक इन दोनों परस्पर-विरोधी आज्ञाओं का सामञ्जस्य अच्छी तरह नहीं कर सके।

मन्त्री ने कुछ देर के बाद फिर कहा—महाराज, दिल्लीश्वर—!

प्रतापादित्य ने झिड़ककर कहा—फिर दिल्लीश्वर? दीवान, दिन भर में तुम जितनी बार दिल्लीश्वर का नाम लेते हो उतनी बार यदि ईश्वर का नाम लेते तो उससे तुम्हारा परलोक सुधरता। जब तक मेरा यह काम पूरा न हो तब तक मेरे सामने दिल्लीश्वर का नाम मुँह पर मत लाना। जब आज दुपहर बाद इस काम के तामील होने की खबर आ जाय तब तुम मेरे कान के पास दिल्लीश्वर का नाम जपकर अपने दिल का हौसला पूरा कर लेना। तब तक अपने मन के आवेग को रोके रहो।

मन्त्री फिर चुप हो रहे। दिल्लीश्वर का जिक्र छोड़कर उन्होंने कहा—महाराज, युवराज उदयादित्य—

राजा ने कहा—दिल्लीश्वर गये, प्रजा गई, अब उस स्त्रैण बालक की ही बात चलाकर डर दिखलाना चाहते हो क्या?

मन्त्री ने कहा—महाराज, आप समझने में बड़ी भूल कर रहे हैं। आपके काम में रोक-टोक करने का मेरा इरादा नहीं है।

प्रतापादित्य ने प्रकृतिस्थ होकर कहा—तो क्या कह रहे थे? कहो।

मन्त्री ने कहा—कल रात को युवराज घोड़े पर सवार होकर एकाएक न मालूम कहाँ गये। वे अब तक नहीं लौटे हैं।

प्रतापादित्य रुष्ट होकर बोले—वह किधर गया है?

मन्त्री—पूरब की ओर।

प्रतापादित्य ने दाँत पर दाँत मसमसाकर कहा—कब गया?

मन्त्री ने कहा—कल आधी रात के समय।

प्रतापादित्य—श्रीपुर के ज़मींदार की लड़की क्या यहीं है?

मन्त्री—जी हाँ।

प्रतापादित्य—वह अपने बाप के घर रहे इसी में बेहतरी है।

मन्त्री ने इसका कुछ जवाब न दिया।

प्रतापादित्य ने कहा—उदयादित्य राजकुमार होने योग्य कभी न था। वह बाल्य-काल से ही प्रजा के साथ हेल-मेल रखने लगा। मेरी सन्तान ऐसी होगी यह कौन जानता था? सिंह के बच्चे को कोई सिंह थोड़े ही बनाता है। उसको सिंह बनने के लिए किसी की शिक्षा दरकार नहीं होती। हाँ, बात यह है कि "नराणां मातुलक्रमः" जान पड़ता है। उसने अपने मातृपक्ष के स्वभाव का अवलम्बन किया है। उस पर फिर श्रीपुर के घर में उसे ब्याह दिया है, इसी से लड़का बेचारा एकबारगी नीचे गिर गया है। ईश्वर करे, मेरे छोटे कुमार राज्य के उपयुक्त हों जिससे मरने के वक्त मेरे मन में कोई चिन्ता न रह जाय। तो क्या वह अब तक नहीं लौटा है?

मन्त्री—जी नहीं।

धरती पर पैर पटककर प्रतापादित्य ने कहा—एक सिपाही उसके साथ क्यों नहीं गया?

मन्त्री—जाने को तो तैयार था, किन्तु उन्होंने उसे जाने से रोक दिया।

प्रतापादित्य—वह छिपकर उसके साथ क्यों नहीं गया?

मन्त्री—यदि उन पर किसी तरह का कुछ सन्देह होता तब तो वह जाता।

प्रतापादित्य—सन्देह क्यों नहीं हुआ? दीवान, तुम हमें समझाना चाहते हो कि उन लोगों ने बड़ा अच्छा काम किया? तुम ऐसा समझाने की व्यर्थ चेष्टा न करो। पहरेदारों ने अपने कर्तव्य में बड़ी असावधानी की है। उस समय फाटक पर कौन था, उसे अभी बुला भेजो। पहरेदारों की इस असावधानी से यदि मेरा उद्देश विफल हुआ तो जान रक्खो, मैं सर्वनाश करूँगा। तुम्हारे

ऊपर भी भय की कुछ कम सम्भावना नहीं है। मेरे साथ तुम बराबर दलील करते आते हो। इसके लिए दूसरा उत्तरदायी नहीं।

प्रतापादित्य ने पहरेदारों को बुलवा भेजा। कुछ देर गम्भीर भाव धारण करके दीवान से पूछा—हाँ, तुम दिल्लीश्वर की बात क्या कह रहे थे ?

मन्त्री—सुना है, आपके ऊपर दिल्लीश्वर के निकट नालिश दायर हुई है।

प्रतापादित्य—किसने दायर की है ? तुम लोगों के युवराज उदयादित्य ने तो नहीं ?

मन्त्री—जी नहीं महाराज, मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि किसने नालिश की है। उसका अभी पता नहीं लगा।

प्रतापादित्य—जो कोई करे, उसके लिए अधिक चिन्ता न करो। दिल्लीश्वर का विचार करनेवाला मैं ही हूँ। मैं ही उनके दण्ड का उद्योग कर रहा हूँ। अरे, वे दोनों पठान अब तक वापस नहीं आये ? उदयादित्य अभी तक नहीं आया ? पहरेदार को जल्दी बुलाओ।

तीसरा परिच्छेद

युवराज सुनसान रास्ते से घोड़े को सरपट दौड़ाते हुए निर्भय चले जा रहे हैं। रात अँधेरी है, किन्तु सड़क बहुत बढ़िया, सीधी और साफ़ है। निःशब्द रात में घोड़े की टाप चारों ओर प्रतिध्वनित हो रही है। कहीं-कहीं दो-एक कुत्ते भूँकते हैं। दो-एक गीदड़ रास्ते से हटकर पास की झाड़ी में भौंचक से खड़े हो जाते हैं। प्रकाश की सामग्री में आकाश के तारे और सड़क के

पार्श्ववर्ती वृक्षों पर जुगनू की जमात है। शब्दों में झिल्लियों का अविरत झङ्कार सुनाई दे रहा है। मार्ग में एक भी पथिक कहीं दिखाई नहीं देता। अस्थिचर्मावशेष एक वृद्ध भिखारी सड़क के किनारे पेड़ के नीचे सोया है। पाँच कोस रास्ता तय करके युवराज एक बड़े मैदान में पहुँचे। घोड़े का वेग अपेक्षा-कृत कुछ कम करना पड़ा। दिन में पानी बरस गया था। ज़मीन गीली हो जाने के कारण घोड़े के पाँव ज़मीन में धँस जाते हैं। कई बार आगे के दोनों पाँवों पर भार देकर घोड़ा गिरने से बचा। थक जाने से उसकी नाक फलक गई है। मुँह से झाग बहा रहा है। जल्दी जल्दी साँस लेने के कारण उसका पेट फूल रहा है। पसीने से बदन तर-बतर हो गया। गरमी की बड़ी प्रबलता है। हवा का कहीं नाम नहीं। अब भी रास्ता बहुत कुछ तय करने को है। कितने ही जलाशय, कितने ही खेत और कितने ही मैदान और झाड़ियाँ पार करके युवराज एक कच्ची सड़क पर आ पहुँचे। उन्होंने फिर घोड़े को तीर की तरह छोड़ा। वे उसके कन्धे को एक बार थपथपाकर और उत्साह देकर बोले--"सुग्रीव!" उसने चकित होकर अपने कान खड़े किये और मालिक की ओर एक बार गर्दन टेढ़ी करके देखा। इसके बाद वह ख़ूब ज़ोर से हिनहिना उठा और रास ढीली करके साँस ऊपर की ओर फेंकता हुआ दौड़ने लगा। वह इस तीव्र गति से दौड़ा जा रहा है कि उदयादित्य को रास्ते के पार्श्ववर्ती पेड़ बखूबी दिखाई नहीं देते। आकाश की ओर देखने से मालूम होता है, जैसे ढेर के ढेर तारे आग की चिनगारियों की तरह बड़े वेग से उड़ रहे हैं। वही बन्द हवा अब आकाश में लहराकर कान के पास सन् सन् करने लगी। जब तीन पहर रात बीत चुकी तब युवराज सिमलतली चट्टी के फाटक पर आ खड़े हुए। घोड़ा उसी समय पछाड़ खाकर धरती पर लोट गया और फिर नहीं उठा। युवराज ने

झुककर उसकी पीठ थपथपाई, उसका मुँह सीधा करके ऊपर उठाया और सुग्रीव कहकर उसे बार-बार पुकारा, पर वह ज़रा भी न हिला। तब युवराज ने लम्बी साँस लेकर ज़ोर से फाटक पर धक्का दिया। उनके बार-बार धक्का देने पर भी चट्टी के अध्यक्ष ने फाटक न खोला। किसी ने खिड़की के पास से झाँककर कहा—कौन हो तुम? इतनी रात में बार-बार क्यों फाटक को ढकेल रहे हो?

युवराज ने कहा—एक बात दरयाफ़्त करनी है, फाटक खोलो।

उसने कहा—द्वार खोलने की क्या ज़रूरत है। जो पूछना हो, वहीं से पूछ लो।

युवराज ने कहा—रायगढ़ के राजा वसन्तराय यहाँ हैं?

उसने कहा—सन्ध्या समय उनके आने की बात थी, किन्तु अब तक वे नहीं आये। जान पड़ता है, किसी कारण से आज उनका आना नहीं हुआ।

युवराज ने दो रुपये हाथ में लेकर बजाकर कहा—यह लो!

उसने झटपट फाटक खोलकर दोनों रुपये ले लिये। तब युवराज ने उससे कहा—भैया, मैं एक बार तुम्हारी चट्टी की जाँच करूँगा। देखूँगा, कौन कौन इस चट्टी में हैं?

चट्टी के रक्षक ने सन्देह करके कहा—नहीं महाशय, यह न हो सकेगा।

उदयादित्य ने कहा—मुझे मत रोको—मैं राजधानी का कर्मचारी हूँ। दो अपराधियों की खोज में आया हूँ।

यही बात कहकर उन्होंने चट्टी में प्रवेश किया। चट्टी के प्रधान ने फिर किसी तरह की रोक-टोक नहीं की। उन्होंने सारी चट्टी छान डाली। किन्तु न तो वसन्तराय देख पड़े, न उनके नौकर और न कोई पठान ही। केवल दो युवतियाँ सो रही थीं।

वे चौंककर जाग उठीं और बोलीं--हटो; कौन है ? इस तरह क्यों ताक रहा है ?

चट्टी से निकलकर युवराज रास्ते पर खड़े हो सोचने लगे। उन्होंने एक बार अपने मन में कहा—अच्छा ही हुआ जो आज वे यहाँ नहीं आये। फिर सोचा, यदि इसके पूरब और किसी चट्टी में ठहरे हों और उनकी खोज में पठान वहाँ तक पहुँच गये हों !

इसी तरह भाँति-भाँति की बातें सोचते हुए वे धीरे-धीरे आगे बढ़ चले। कुछ दूर आगे जाकर उन्होंने देखा, सामने एक घुड़-सवार आ रहा है। जब वह बहुत पास आ गया तब युवराज ने पूछा—कौन है, रतन तो नहीं ? वह तुरन्त घोड़े से उतर पड़ा और युवराज को प्रणाम करके बोला—जी हाँ, आप इतनी रात में यहाँ कैसे ?

युवराज—उसका कारण पीछे कहूँगा। पहले यह तो बतलाओ, दादाजी कहाँ हैं।

रतन—उनकी तो आज इस चट्टी में रहने की बात थी।

युवराज—अयँ ! यह क्या ? वहाँ तो उनको नहीं देखा।

उस व्यक्ति ने क्षुब्ध होकर कहा—महाराज आज तीस नौकरों के साथ यशोहर रवाना हुए हैं। मैं कामों में फँस जाने के कारण पीछे रह गया। इसी चट्टी में आज सन्ध्या-समय उनसे मिलने की बात थी।

उदयादित्य—मुझे तुम अपना घोड़ा दो, मैं दादाजी की खोज में जाता हूँ। तुम अब पैदल ही आओ।

——

चौथा परिच्छेद

सुनसान जगह में, सड़क के किनारे, पीपल के पेड़ के नीचे एक पालकी के भीतर वसन्तराय बैठे हैं। उनके साथी लोग न मालूम कहाँ चले गये हैं। सिर्फ़ एक पठान पालकी से ज़रा दूर, हटकर, बैठा है। रात इतनी अधिक हो गई है कि कहीं कोई शब्द सुनाई नहीं देता। वसन्तराय ने पूछा—ख़ाँ साहब, तुम क्यों नहीं गये? पठान ने कहा—हुज़ूर, मैं कैसे जाता! आपने हमारे धन-जन की रक्षा के लिए अपने कुल नौकरों को भेज दिया है। मैं आपको इस भयानक रात में यहाँ अकेले छोड़कर चल देता यह क्या मुनासिब था? आप मुझे इतना बड़ा स्वार्थी न समझें। शायर ने कहा है—जो मेरी बुराई करता है वह मेरा ऋणी है, दूसरे जन्म में उसे उस ऋण को वसूल करना होगा और जो मेरी भलाई करता है उसका मैं ऋणी हूँ, उसका ऋण किसी समय में भी मैं न चुका सकूँगा।

वसन्तराय ने मन ही मन कहा—वाह-वाह, यह आदमी तो बड़ा अच्छा मालूम होता है। कुछ देर के बाद उन्होंने पालकी से अपना सिर बाहर निकालकर कहा—ख़ाँ साहब, तुम बड़े अच्छे आदमी हो।

ख़ाँ साहब ने झट सलाम किया। ख़ाँ साहब भी अपने को ऐसा ही समझते थे। वसन्तराय ने मशाल की रोशनी में उस पठान का चेहरा देखकर कहा—तुम अच्छे ख़ानदान के आदमी जान पड़ते हो।

पठान ने फिर सलाम करके कहा—क्या कहना है, बड़े तअ़ज्जुब की बात है! महाराज का ख़याल बहुत ठीक है।

वसन्तराय ने कहा—अब तुम्हारी क्या हालत है?

पठान ने लम्बी साँस लेकर कहा—हुजूर, हालत की बात न पूछिए, बहुत बुरी हालत है, बड़ी तकलीफ़ से वक्त कटता है। अब खेती-बारी से ही गुज़ारा चलता है। किसी शायर ने कहा है—हे विधाता! तुमने जो दूब (घास) को बहुत छोटा बनाया सो इसमें तुम्हारी कोई कठोरता प्रकट नहीं होती, किन्तु पीपल का पेड़ उतना बड़ा बनाकर तुम उसे आँधी में नीचे गिराकर उसे दूब के साथ बराबर करके धरती पर सुला देते हो, इससे तुम्हारे पाषाण-हृदय की कठोरता अवश्य प्रकट होती है।

वसन्तराय बड़े ही उल्लास के साथ बोले—वाह, वाह! शायर ने क्या ही अच्छा कहा है। ये दोनों बातें—जो अभी तुमने कही हैं—लिख देनी होंगी।

पठान ने मन ही मन सोचा—मेरी तक़दीर अच्छी जान पड़ती है। यह बूढ़ा रईस तो बड़ा ही रसीला मालूम होता है। इसके द्वारा ग़रीबों का बहुत कुछ उपकार होता होगा।

वसन्तराय ने अपने मन में कहा—अहा, जो किसी वक्त बड़ा आदमी था आज उसकी ऐसी बुरी हालत! चञ्चला लक्ष्मी की बड़ी ही विचित्र लीला है। आख़िर उन्होंने अधीर होकर पठान से कहा—तुम्हारा बदन जैसा मज़बूत और सुडौल है उससे तो तुम बड़ी आसानी से पलटन में भरती हो सकते हो।

पठान तुरन्त बोल उठा—जी हाँ हुजूर, क्यों नहीं हो सकता हूँ? मैं भी यही चाहता हूँ। मेरे बाप, दादे और परदादे सब तलवार हाथ में लेकर ही मरे हैं। शायर ने कहा है—

वसन्तराय ने हँसते-हँसते कहा—शायर की बात रहने दो, यदि तुम मेरा कहना क़बूल करो तो तलवार हाथ में लेकर मरने का मनोरथ पूरा हो सकेगा। किन्तु वह तलवार कभी म्यान से बाहर निकालने की आवश्यकता न होगी। मैं अब बुड्ढा हुआ, प्रजा सुख-चैन से है। ईश्वर न करे कि कभी युद्ध करने की

आवश्यकता हो। उम्र बीत ही गई है। मैंने तलवार को अपने हाथ से अलग कर दिया है। तलवार को अब हाथ में लेने की ज़रूरत क्या? तलवार के बदले अब एक और ही ने मेरा हाथ पकड़ा है। यह कहकर उन्होंने बग़ल में रक्खे हुए सितार के तारों पर दो-एक बार उँगली फेर दी।

पठान ने सिर हिलाकर कहा—हुज़ूर बहुत ठीक कह रहे हैं। कहा है कि "तलवार से दुश्मन जीता जाता है, किन्तु सङ्गीत से शत्रु भी मित्र बन जाता है।"

वसन्तराय ने कहा—ख़ाँ साहब, क्या कहा? सङ्गीत से शत्रु भी मित्र बन जाता है; क्या चमत्कार है? चुप होकर वे विचारने लगे। जितना ही विचारने लगे, मानों उतना ही अधिक क्षुब्ध होने लगे। कुछ देर बाद विचार करके बोले—तलवार जो इतनी बड़ी भयानक चीज़ है, उससे शत्रु की शत्रुता का नाश नहीं होता। किस तरह कहूँगा कि नाश होता है? रोगी को मारकर रोग निवृत्त करना क्या आरोग्य करना कहलावेगा? किन्तु सङ्गीत ऐसी मधुर चीज़ है जिससे शत्रु-नाश किये बिना भी शत्रुत्व का नाश हो जाता है।

क्या यह साधारण कवित्व की बात है। वृद्ध वसन्तराय यहाँ तक उत्तेजित हो उठे कि पालकी से पाँव बाहर निकालकर बैठ गये। उन्होंने पठान को और नज़दीक में आने के लिए संकेत करके कहा—ख़ाँ साहब, तलवार से दुश्मन जीता जाता है; किन्तु सङ्गीत से शत्रु भी मित्र बन जाता है।

पठान—जी हाँ, हुज़ूर।

वसन्तराय—तुम एक बार रायगढ़ आना, मैं यशोहर से लौट आता हूँ तो तुम्हारा यथासाध्य उपकार करूँगा।

पठान ने मारे ख़ुशी के फूलकर कहा—आप चाहें तो क्या नहीं कर सकते। उसने मन में कहा—मैंने एक अच्छी चिड़िया फँसाई है। प्रकट में कहा—सरकार सितार तो बजाते होंगे।

"हाँ" कहकर वसन्तराय ने तुरन्त हाथ में सितार ले उँगली में मेज़राब पहनी और विहाग गाना आरम्भ किया। बीच-बीच में पठान सिर हिलाकर कहने लगा—वाह, वाह! क्या कहना है, बहुत ख़ासे। उत्तेजना के आधिक्य से पालकी में बैठ रहना वसन्तराय के लिए असह्य हो उठा। वे पालकी से निकलकर सितार बजाने लगे। उस बजाने की झोंक में वे अपनी राजमर्यादा, गम्भीरता और आत्मगौरव आदि भूल गये। सितार बजाने के साथ-साथ यों तान लेने लगे—कैसे काटूँगी रैन सो पिया बिना।

गाना समाप्त होने पर पठान ने कहा—वाह साहब, आपका गला भी क्या ही मीठा है।

वसन्तराय—गला तो मेरा उतना अच्छा नहीं है। पर बात यह है कि निःशब्द रात में और खुले मैदान में प्रायः सभी की आवाज़ मीठी जान पड़ती है। मैंने अपने गले को ख़ूब साधा है, पर तो भी लोग मेरे स्वर की कुछ ज़्यादा तारीफ़ नहीं करते। इससे क्या, विधाता ने जितने रोग रचे हैं उनकी एक न एक दवा ज़रूर बना रक्खी है। उसी तरह जितनी आवाज़ें हैं सबका एक न एक सुननेवाला भी ज़रूर है। जिन्हें मेरा गाना अच्छा लगता है, ऐसे दो व्यक्ति अब भी हैं। यह न होता तो मैं इस गले की दुकानदारी को कब का समेट चुका होता। वे दोनों ग्राहक उतने समझदार नहीं हैं। उन्हें चीज़ की पहचान नहीं है। पर मेरे गाने की प्रशंसा करनेवाले वे ही दोनों हैं। मैंने बहुत दिनों से उनकी जुदाई का दुःख सहा है, इसी से गाने-बजाने में जी नहीं लगता। सच पूछो तो इसी से उनके पास दौड़ा जा रहा हूँ। वहाँ जाकर अच्छी तरह गा-बजाकर जी का बोझ हलका करके फिर अपने घर लौट जाऊँगा।

वृद्ध वसन्तराय की आँखें मारे स्नेह और ख़ुशी के चमकने लगीं। पठान ने मन में कहा—आपका कुछ हौसला तो अभी

पूरा हो चुका है, आपने गा-बजाकर अपने दिल को बहला ही लिया है। रहा जी का बोझ, सो क्या उसे मैं यहीं हमेशा के लिए हलका कर दूँ ? तोबा, तोबा, ऐसा भी काम कोई करता है। काफ़िरों के मारने में सवाब है सही, पर वह सवाब मैंने इतना हासिल कर लिया है कि आक़बत के लिए अब ज़्यादा ज़रूरत नहीं। इस वक्त की सभी बातें जैसी बे-तरतीब दिखाई दे रही हैं उससे तो इस काफ़िर को न मारकर अगर इससे अपना कोई काम निकाल लूँ तो इसी में बेहतरी है।

वसन्तराय ज़्यादा देर चुप न रह सके। उन्होंने पठान के बिलकुल पास जाकर चुपके से कहा—मैंने जिनके बारे में कहा था, उन्हें तुम जानते हो ? वे दोनों मेरे पोते-पोती हैं।

नौकरों के आने में विलम्ब होते देख वसन्तराय के मन में चिन्ता हो आई। वे कुछ देर उसी सोच में डूबे रहे, फिर सितार लेकर गाने लगे।

एक घुड़सवार ने सामने आकर कहा—ओह, अब मेरा जी ठिकाने लगा। दादाजी, आप इतनी रात में सड़क के किनारे बैठकर किसको गाना सुना रहे हैं ?

वसन्तराय ने चकित होकर तुरन्त अपने सितार को पालकी के ऊपर रख दिया और उदयादित्य का हाथ पकड़ घोड़े पर से नीचे उतारा और आलिङ्गन करके पूछा—क्या हाल है ? तुम्हारे घर सब लोग अच्छी तरह हैं न ?

उदयादित्य ने कहा—हाँ, सब लोग अच्छी तरह हैं।

तब वसन्तराय ने हँसते हुए सितार उठा लिया और पाँव से ताल देकर सिर हिलाते हुए फिर गाना आरम्भ कर दिया।

उदयादित्य ने पठान की ओर देखकर वसन्तराय के कान के पास मुँह ले जाकर पूछा—यह आपके पास यहाँ कहाँ से आया ?

वसन्तराय ने कहा—ख़ाँ साहब, बड़े अच्छे आदमी हैं। बड़े समझदार हैं। इनके साथ आज की रात बड़ी ख़ुशी में कटी।

उदयादित्य को देखकर वह पठान मन ही मन अधिक व्यग्र हो पड़ा। अब वह क्या करे, उसकी समझ में कुछ नहीं आता।

उदयादित्य ने वसन्तराय से पूछा—आप चट्टी में न जाकर यहाँ क्यों ठहरे हैं?

पठान अब चुप न रह सका। वह एकाएक बोल उठा—हुजूर, क़सूर माफ़ करें तो मैं एक अर्ज़ करूँ। हम महाराज प्रतापादित्य की प्रजा हैं। महाराज ने मुझे और मेरे भाई को आज्ञा दी है कि जब उनके चचा वसन्तराय यशोहर की ओर आने लगें तब उन्हें रास्ते में मार डालो।

वसन्तराय चौंककर बोले—राम-राम।

उदयादित्य—अच्छा तब—

पठान—हम लोग कभी ऐसा काम नहीं करते। महाराज ने हम लोगों के उज्र करने पर अनेक प्रकार का भय दिखलाया, तब लाचार होकर इस काम के लिए रवाना हुए। यहाँ रास्ते में इनसे भेंट हुई। मेरा भाई, इनसे झूठ-मूठ यह कहकर कि मेरे गाँव में डाका पड़ा है, इनके नौकरों को अपने साथ ले गया है और उस काम का भार मेरे ऊपर दे गया है। यद्यपि मेरे राजा साहब की आज्ञा इनका ख़ून करके ही आने की है, तथापि मुझसे ऐसा काम कभी नहीं हो सकता। कारण यह कि हमारे शायरों ने कहा है—मालिक के हुक्म से सारी पृथ्वी का नाश कर डालना पर ख़बरदार, स्वर्ग के एक कोने को भी न बिगाड़ना। यह ताबेदार हुजूर की ख़िदमत में हाज़िर है। महाराज का हुक्म बिना तामील किये यशोहर लौट जाने से हमारी जान न बचेगी। आप हमारी रक्षा न करेंगे तो हमारे बचने का और कोई उपाय नहीं। यह कहकर वह उदयादित्य के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

पठान की यह बात सुनकर वसन्तराय के तो होश उड़ गये। वे अवाक् हो चित्रवत् खड़े रहे। कुछ देर के बाद उन्होंने पठान

से कहा कि मैं तुमको एक ख़त देता हूँ। तुम यहाँ से सीधे राय-गढ़ चले जाओ। मैं यशोहर से लौटकर तुम्हारी जीविका का प्रबन्ध कर दूँगा।

उदयादित्य—दादाजी, ऐसी हालत में आप फिर यशोहर जाना चाहते हैं?

वसन्तराय—हाँ।

उदयादित्य—क्यों?

वसन्तराय—प्रताप मेरा कितना ही अपराध क्यों न करे, पर है तो वह मेरा भतीजा ही। अब मैं अपने मरने-जीने की परवा नहीं करता; क्योंकि मेरी नाव अब किनारे लग चुकी है। मेरे जीवन के अब इने-गिने दिन बच रहे हैं। किन्तु इस पितृव्य-हत्या से प्रताप के जो यह लोक और परलोक दोनों बिगड़ेंगे इसका मुझे अत्यन्त खेद हो रहा है। कौन जाने यह प्राण-पखेरू किस दिन इस देह-पिञ्जर से उड़ जाय, इसलिए एक बार प्रताप से मिलकर मैं उसे भली भाँति समझा तो दूँ।

यह कहते-कहते वसन्तराय की आँखों में आँसू भर आये। उदयादित्य ने दोनों हाथों से अपने अश्रुपूर्ण नेत्र ढाँप लिये। इसी समय शोर-गुल मचाते हुए वसन्तराय के नौकर वहाँ आ पहुँचे और सब एक स्वर से कहने लगे—महाराज कहाँ हैं? महाराज कहाँ हैं?

वसन्तराय—इसी जगह हूँ; और कहाँ जाऊँगा?

वसन्तराय बड़ी आतुरता से उन नौकरों के बीच में खड़े होकर बोले—हाँ, हाँ; ख़बरदार! तुम लोग ख़ाँ साहब को कुछ न कहो।

पहला—महाराज, आज हम लोगों के कष्ट की सीमा नहीं रही। आज वह—

दूसरा—तुम ठहरो न, मैं सब बातें अच्छी तरह समझाकर कहता हूँ। वह दुष्ट पठान हम लोगों को बराबर सीधे ले जाकर आख़िर बाईं तरफ़ एक आम के बाग़ में—

तीसरा—अरे वह आम का बाग़ नहीं था। वह तो बबूल का जङ्गल था।

चौथा—वह बाईं ओर नहीं, दाहिनी ओर था।

दूसरा—नहीं जी, वह बायें हाथ की तरफ़।

चौथा—तुम्हारी ही बात सही—वह बायें ही हाथ की तरफ़ था।

दूसरा—बायें हाथ की तरफ़ न होगा तो वह पोखर—

उदयादित्य—हाँ जी, वह बाईं ओर ही जान पड़ता है, उसके बाद क्या हुआ सो कहो।

दूसरा—जी हाँ, वह पठान उस बाईं तरफ़वाले आम के बाग़ के बीच से एक मैदान में ले गया। हम लोग उसके साथ कितने ही खेत, मैदान, बँसवाड़ी, जल और थल पार कर गये। किन्तु गाँव का कहीं नाम-निशान नहीं मिला। इसी तरह वह साला हम लोगों को तीन-चार घण्टे तक घुमा-फिराकर गाँव के आस-पास से कहाँ भाग गया उसका पता नहीं।

पहला—उस बदमाश को देखकर मैं पहले ही समझ गया था।

दूसरा—मैंने भी समझा था कि वह ऐसा ही कुछ होगा।

तीसरा—जब मैंने नज़दीक से उसे देखा तब मेरे मन में भी सन्देह हुआ।

आख़िर एक-एक कर सभी ने ज़ाहिर किया कि वे लोग पहले ही जान चुके थे कि वह धोखा देकर उन लोगों को ले गया था।

— —

पाँचवाँ परिच्छेद

प्रतापादित्य ने कहा—देखो दीवान, वे दोनों पठान अब तक नहीं आये !

मन्त्री ने धीरे से कहा—महाराज ! इसमें तो मेरा कोई अपराध नहीं।

प्रतापादित्य ने झिड़ककर कहा—इसमें अपराध की क्या बात है ? देरी होने का कोई कारण तो होगा। तुम क्या सोचते हो—यही पूछता हूँ।

मन्त्री—सिमलतली यहाँ से बहुत दूर है। जाने और काम करके आने में विलम्ब होने की बात ही है।

मन्त्री की बात से प्रतापादित्य सन्तुष्ट नहीं हुए। वे चाहते थे कि हम जो कुछ अनुमान कर रहे हैं वही अनुमान मन्त्री भी करे। किन्तु मन्त्री का ख़याल उस तरफ़ न गया।

प्रतापादित्य ने कहा—उदयादित्य कल रात में कहीं गया है न ?

मन्त्री—यह तो मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ।

प्रतापादित्य—पहले ही निवेदन कर चुका हूँ ! क्या ठीक वक्त पर तुमने कहा है। वाह ! किसी समय ख़बर दे दी, बस तुम्हारा काम पूरा हो गया। उदयादित्य तो पहले ऐसा न था। जान पड़ता है, श्रीपुर के ज़मींदार की लड़की ने उसे बुरी सलाह दी होगी। तुम क्या ख़याल करते हो ?

मन्त्री—महाराज, यह मैं कैसे कहूँ ?

प्रतापादित्य बोल उठे—तुम्हारे मुँह से क्या मैं वेद-वाक्य सुना चाहता हूँ ? तुम इस विषय में क्या अनुमान करते हो, सो कहो।

मन्त्री—आप महारानी साहिबा के द्वारा बहूजी की सभी बातें सुनते होंगे। इस विषय में आप ही अनुमान कर सकते हैं। मैं किस तरह अनुमान करूँगा ?

इसी समय एक पठान कमरे में आ पहुँचा।

प्रतापादित्य ने उससे पूछा—क्या हुआ? काम पूरा कर आया?

पठान—जी हाँ महाराज, इतनी देर में काम पूरा हो गया होगा।

प्रतापादित्य—काम हुआ या नहीं, यह क्या तुम्हें मालूम नहीं है?

पठान—जी हाँ, हुजूर, मालूम क्यों नहीं है। काम हो चुका है। इसमें सन्देह नहीं। सच बात यह है कि मैं उस वक्त वहाँ मौजूद नहीं था।

प्रतापादित्य—तो तुम्हें क्योंकर मालूम हुआ कि काम हो गया?

पठान—मैं आपकी आज्ञा के अनुसार उनके नौकर और सङ्गी-साथियों को वहाँ से दूर हटाकर चला आ रहा हूँ। हुसेनखाँ ने काम किया होगा।

प्रतापादित्य—अगर न किया हो?

पठान—महाराज, ज़मानत में मेरा सिर हाज़िर है।

प्रतापादित्य—अच्छा, यहाँ मौजूद रहो, तुम्हारे भाई के लौट आने पर इनाम मिलेगा।

पठान वहाँ से कुछ दूर हटकर दरवाज़े के पास पहरेदारों की सुपुर्दगी में रहा।

प्रतापादित्य ने बड़ी देर तक चुप रहकर मन्त्री से धीरे-धीरे कहा—यह बात प्रजा पर ज़ाहिर न होने पावे।

मन्त्री ने कहा—महाराज, आप नाराज़ न हों तो अर्ज़ करूँ। यह बात ज़ाहिर होगी ही।

प्रतापादित्य—तुमने कैसे जाना?

मन्त्री—इसके पहले आप अपने चचा के ऊपर विद्वेष प्रकट कर चुके हैं। राजकुमारी के विवाहोत्सव में आपने वसन्तराय को नहीं बुलाया। वे बिना बुलाये स्वयं आपके यहाँ आकर उपस्थित हुए थे। आज आपने एकाएक बिना किसी काम के उनको बुला भेजा। ऐसी हालत में प्रजा इस घटना का मूल आप ही को समझेगी।

प्रतापादित्य ने रुष्ट होकर कहा—दीवान, तुम्हारा मतलब मेरी समझ में नहीं आता। जान पड़ता है, इस बात के प्रकट होने ही में तुम्हें ख़ुशी है; मेरी बदनामी फैलने ही से तुम्हारा मन सन्तुष्ट होगा। अगर यह बात नहीं है तो तुम दिन-रात क्यों कहा करते हो कि बात तो ज़ाहिर ही होगी। ज़ाहिर होने की तो कोइ वजह दिखाई नहीं देती। मालूम होता है, और किसी तरह ख़बर न फैलने की हालत में तुम स्वयं दरवाज़े-दरवाज़े जाकर इस बात को ज़ाहिर करते फिरोगे।

मन्त्री—महाराज, माफ़ करें। आप मेरी अपेक्षा स्वयं सब बातों को विशेष रूप से समझते हैं। आपको सलाह देना मेरे सदृश अल्पज्ञ लोगों की बिलकुल नादानी है। तब आपही ने मुझको चुनकर मन्त्री रक्खा है, इसी साहस पर, अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार, जो उचित समझता हूँ बीच-बीच में आपसे निवेदन करता हूँ। मेरे निवेदन से यदि आप रुष्ट होते हैं तो सेवक को इस मन्त्रित्व-पद से अलग कर दें।

प्रतापादित्य ठिकाने पर आये। कभी-कभी मन्त्री जब उन्हें दो-एक कड़वी-मीठी बातें सुना देता था तब प्रतापादित्य मन ही मन सन्तुष्ट होते थे।

प्रतापादित्य—मैं सोच रहा हूँ कि इन दोनों पठानों को मार डालने से उस बात के फैलने का कोइ ख़ौफ़ न रहेगा।

मन्त्री—एक ख़ून का छिपाना तो कठिन हो रहा है। तीन-तीन ख़ून छिपा रखना सर्वथा असम्भव है। प्रजा जानेगी ही।

मन्त्री ने बराबर अपनी बात जारी रक्खी।

प्रतापादित्य—तब तो मैं मारे डर के घर छोड़कर अभी भाग चला! प्रजागण जानेंगे ही, यशोहर रायगढ़ नहीं है। यहाँ प्रजा का राज्य नहीं है। यहाँ राजा के सिवा और कोई राजा नहीं। अतएव तुम मुझको प्रजा का भय मत दिखलाओ। अगर कोई प्रजा इस विषय में मेरे विरुद्ध कोई बात बोलेगी तो तपाये हुए लोहे से उसकी जीभ जला दूँगा।

मन्त्री मन ही मन हँसा। उसने अपने मन में कहा—प्रजा की जिह्वा का इतना भय है तथापि आप अपने जी को तसल्ली देते हैं कि किसी प्रजा से आप नहीं डरते।

प्रतापादित्य—श्राद्ध आदि कार्य्य समाप्त हो जाने पर लोगों को साथ लेकर एक बार रायगढ़ जाना होगा। मेरे सिवा उस जगह के सिंहासन का उत्तराधिकारी और तो कोई नहीं दिखाई देता।

इतने में वृद्ध वसन्तराय ने धीरे-धीरे घर में प्रवेश किया। प्रतापादित्य चौंककर पीछे हट गये। एकाएक उन्होंने समझा कि शायद यह भूत बनकर यहाँ आया है। वे चुप हो रहे। एक बात भी न बोल सके। वसन्तराय ने प्रतापादित्य के पास जाकर, उनकी देह पर हाथ फेरकर, कोमल स्वर से कहा—प्रताप, मेरा डर कैसा? मैं तुम्हारा चचा वही वसन्तराय हूँ। इस पर भी यदि तुम्हें मेरा विश्वास न हो तो मैं वृद्ध हूँ, ऐसी सामर्थ्य मुझमें नहीं कि मैं तुम्हारा अहित कर सकूँ।

प्रतापादित्य को चेत हो आया। किन्तु कोई बात बनाकर बोलने में वे तनिक भी कुशल न थे। कुछ उत्तर न देकर चुप हो रहे। उनसे चचा को प्रणाम तक करते न बना। वसन्तराय ने

फिर धीरे-धीरे कहा—प्रताप, कुछ भी तो बोलो। यदि दैववशात् ऐसा कोई काम तुमसे हो गया हो जिससे मुझे देखकर तुम्हें लज्जा और ग्लानि होती है तो उसके लिए चिन्ता न करो। मैं इन सब बातों का कभी जिक्र न करूँगा। आओ, एक बार तुम्हें गले से लगाऊँ। आज कितने दिनों पर तुम्हें देखा है। तुम्हारे देखने के लिए मैं अब ज्यादा दिनों तक थोड़े ही बैठा रहूँगा।

इतनी देर के बाद प्रतापादित्य ने प्रणाम किया और उठकर चचा के साथ भेंट की। इस अरसे में मन्त्री धीरे-धीरे कमरे से बाहर हो गये। वसन्तराय मुसकुराकर और प्रतापादित्य के बदन पर हाथ रखकर बोले—प्रताप, वसन्तराय बहुत दिन जी चुका। अब समय हो गया है। अब भी मेरा बुलावा क्यों नहीं आता, इसे दैव जाने। किन्तु अब अधिक विलम्ब नहीं है।

वसन्तराय कुछ देर चुप रहे। प्रतापादित्य ने उनके प्रश्न का कुछ उत्तर न दिया।

वसन्तराय ने फिर कहा—सुनो प्रताप, मैं सब बातें तुमसे खुलासा कहता हूँ। तुम जो मेरी हत्या करना चाहते हो, यह बात मेरे हृदय में छुरी की अपेक्षा दुःसह यन्त्रणा दे रही है। तो भी मैं तुमसे जरा भी द्वेष-भाव नहीं रखता। मैं तुमसे सिर्फ़ दो बातें कहने आया हूँ। एक तो यह कि तुम मेरी हत्या का पाप अपने ऊपर न लो, इसमें तुम्हारे लोक-परलोक दोनों बिगड़ेंगे। दूसरे, यदि तुमने इतने दिन तक मेरी मृत्यु की प्रतीक्षा की तो कुछ दिन और करो। थोड़े दिन की बात है, इसके लिए क्यों अपना पर-लोक बिगाड़ते हो।

इस पर भी प्रतापादित्य कुछ न बोले। वसन्तराय ने जब देखा कि प्रतापादित्य न तो कुछ उत्तर देते हैं, न अपने दोष को स्वीकार ही करते हैं और न पश्चात्ताप का भाव ही उनके चेहरे से कुछ लक्षित होता है, तब उन्होंने प्रस्तुत बात को छोड़कर दूसरी बात छेड़ी।

उन्होंने कहा—प्रताप, एक बार रायगढ़ चलो। तुम बहुत दिनों से रायगढ़ नहीं गये। अब वहाँ पहले से बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है। सैनिकों ने तलवार छोड़कर अब हाथ में कुदाल ली है। जहाँ सेना के रहने के घर थे, वहाँ अब अतिथिशाला बनी है।

इसी समय प्रतापादित्य ने दूर से देखा कि पठान भागने का उपक्रम कर रहा है। यह देखकर वे स्थिर न रह सके। उनके हृदय में देर से जो क्रोधाग्नि सुलग रही थी वह एक बार ही प्रज्वलित हो उठी। उन्होंने वज्र-स्वर से पहरेदार को पुकारकर कहा—ख़बरदार, देखो, वह पठान भागने न पावे। उसे पकड़ रक्खो। यह कहकर वे बड़ी फुर्ती से कमरे के बाहर आये। उन्होंने मन्त्री को बुलाकर कहा—राज-काज में तुम्हारी बड़ी ही लापरवाही देख रहा हूँ।

मन्त्री ने धीरे से कहा—महाराज, इस विषय में मेरा कोई क़सूर नहीं।

प्रतापादित्य उच्च स्वर से बोले—मैं किसी ख़ास विषय का निर्धारण नहीं कर रहा हूँ। मैं कह रहा हूँ कि राज-काज में तुम्हारी बड़ी ही लापरवाही देख रहा हूँ। मैंने उस दिन तुम्हें एक चिट्ठी रखने के लिए दी थी। तुमने उसे खो दिया।

डेढ़ महीना पहले इस तरह की एक घटना और हुई थी, किन्तु उस समय महाराज ने मन्त्री से उस चिट्ठी के लिए कुछ न कहा था।

"और एक दिन मैंने उमेशराय के पास तुमको जाने की आज्ञा दी थी किन्तु तुमने किसी दूसरे को भेजकर काम निकाल लिया। चुप रहो! दोष छिपाने के लिए झूठ मूठ बात बनाने की चेष्टा न करो। जो हो, मैंने तुमको सावधान कर दिया है। राज-काज में तुम्हारा ज़रा भी जी नहीं लगता।"

राजा ने पहरेदारों को बुलाया। गत रात्रि के पहरेदारों का वेतन काट लिया गया था। इस समय उन लोगों को क़ैदख़ाने में जाने का हुक्म हुआ।

प्रतापादित्य ने अन्दर महल में रानी से जाकर कहा—मैं अपने घर में बड़ा ही गोलमाल देख रहा हूँ। उदयादित्य तो पहले ऐसा नहीं था। अब तो वह अपनी इच्छा से जब चाहता है बाहर निकल जाता है, प्रजा का पक्ष लेता है; मेरे विरुद्ध काम करता है। इन बातों का क्या कारण है ?

रानी ने डरकर कहा—महाराज, उसका कोई क़सूर नहीं। इन सब अनर्थों की जड़ यही बड़ी बहू है। मेरा बच्चा तो पहले ऐसा नहीं था। जिस दिन से श्रीपुर के घर में उसका ब्याह हुआ उसी दिन से उदय कुछ और ही तरह का हो गया। कुछ समझ में नहीं आता।

महाराज सुरमा को कड़ाई के साथ रखने की आज्ञा देकर बाहर गये। महारानी ने उदयादित्य को बुला भेजा। उदयादित्य के आने पर उनके मुँह की ओर देखकर बोलीं—अहा, बच्चा मेरा कैसा दुर्बल और काला हो गया है। ब्याह के पहले मेरे बच्चे की रङ्गत कैसी थी! मानो तपाये हुए सोने की तरह थी। हा, किसने तुम्हारी ऐसी दशा की! बेटा, बड़ी बहू तुमको जो कहे उस पर ध्यान न दो! उसी की बातों में पड़कर तुम्हारी ऐसी दशा हुई है।

सुरमा घूँघट डाले क़रीब ही चुपचाप खड़ी थी। रानी कहने लगीं—'उसका छोटे कुल में जन्म हुआ है। वह क्या तेरे लायक़ है? वह तुझे अच्छी सलाह देना क्या जाने। मैं सच कह रही हूँ, वह तुझे कभी अच्छी सलाह नहीं देती होगी। तेरी ख़राबी होने ही में वह सुख मानती है। हाय! महाराज ने ऐसी राक्षसी के साथ तुझे क्यों ब्याह दिया?' यह कह रानी ने आँसू बरसाना शुरू किया।

उदयादित्य के ऊँचे ललाट पर पसीने की बूँदें दिखाई देने लगीं। उनके मन की अधीरता कहीं प्रकट न हो, इसलिए उन्होंने अपने विशाल नेत्रों को दूसरी ओर फेर लिया।

वहाँ एक पुरानी बुड्ढी नौकरानी बैठी थी। वह हाथ चमका-चमकाकर कहने लगी—श्रीपुर की औरतें जादू जानती हैं।

उन्होंने ज़रूर कुँवर पर कुछ टोना किया है। यह कहकर उदयादित्य के पास जाकर बोली—कुमार, उसने तुम पर कुछ टोना किया है। इस लड़की को देख रहे हो, यह कुछ साधारण लड़कियों में नहीं है। श्रीपुर के घर की लड़की है। वे सब डायनें हैं। हाय, हाय, बच्चे की देह में कुछ न रहने दिया! यह कहकर उसने सुरमा की ओर तीर की तरह एक कटाक्षपात किया और हाथों में आँचल लेकर दोनों सूखी आँखों को रगड़ते-रगड़ते लाल कर डाला। यह देखकर महारानी का दुःख फिर एकबारगी उबल पड़ा। रनवास में जितनी वृद्धाएँ थीं सभी ने क्रमशः रोना आरम्भ कर दिया। रोने के लिए रानी के घर में आकर सब इकट्ठी हुईं। उदयादित्य ने कारुण्य की दृष्टि से सुरमा की ओर देखा। सुरमा ने घूँघट के बीच से उसे देखा। वह आँखें पोंछकर और बिना कुछ कहे सुने धीरे-धीरे अपने महल में चली गई।

सन्ध्या-समय रानी ने प्रतापादित्य से कहा—आज मैंने उदय को सब बातें समझाकर कह दी हैं। मेरा बच्चा वैसा नहीं है। समझाने से समझ जाता है। आज उसकी आँखें खुल गईं।

——

छठा परिच्छेद

विभा का मुँह उदास देखकर सुरमा को बड़ा दुःख हुआ। उसने विभा को गले लगाकर कहा—मेरी प्यारी ननद, आज तुम इतनी उदास क्यों हो? तुम्हारे मन में जो दुःख होता है, वह तुम मुझसे क्यों नहीं कहतीं?

विभा ने धीरे-धीरे कहा—मेरे मन में जो दुःख होता है, वह क्या तुम नहीं जानतीं?

सुरमा—तुमने बहुत दिनों से ननदोई को नहीं देखा है, तुम्हारा मन उदास क्यों न होगा ? तुम उनको आने के लिए एक चिट्ठी लिखो न। मैं तुम्हारे भाई के द्वारा उस चिट्ठी को चुपचाप भेज देने का प्रबन्ध कर दूँगी।

विभा के स्वामी, चन्द्रद्वीप के राजा, रामचन्द्र राय, के सम्बन्ध में यह बातचीत हो रही थी।

विभा सिर नीचा करके कहने लगी—यदि यहाँ उनका कोई आदर-सत्कार न करे, यदि उन्हें बुलाना कोई आवश्यक न समझे, तो उनका यहाँ न आना ही अच्छा है। यदि वे आप ही यहाँ आना चाहेंगे तो मैं उन्हें रोक दूँगी। वे भी तो एक देश के राजा हैं। जहाँ उनका उचित आदर न होगा, वहाँ वे क्यों आवेंगे ? हम लोगों की अपेक्षा वे किस अंश में न्यून हैं जो मेरे पिता उनका अपमान करेंगे ! यों कहते कहते विभा का गला रुक गया। उसका मुँह मारे ग्लानि और क्रोध के लाल हो गया। उसकी आँखों से आँसू टपक पड़े।

सुरमा ने विभा को अपनी छाती से लगाकर और उसके आँसू पोंछकर कहा—अच्छा, एक बात तुमसे पूछती हूँ। अगर तुम पुरुष होतीं तो क्या करतीं ? निमन्त्रण-पत्र न पाने से क्या तुम कभी ससुराल न जातीं ?

विभा—नहीं, कभी नहीं जाती। यदि मैं पुरुष होती तो ऐसी दशा में भी चली जाती। मान-अपमान का ख़याल न करती। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि वे सादर निमन्त्रण पाये बिना ही चले आवें। तुम्हीं कहो, यदि उन्हें कोई आदरपूर्वक न बुलावेगा तो वे क्यों आवेंगे ?

विभा इस तरह अपने मन की बात खोलकर कभी नहीं कहती थी। आज आवेश में आकर वह बहुत कुछ बोल गई। उतनी देर पीछे अपने अनर्गल भाषण पर उसका ध्यान गया। वह मन ही

मन सोचने लगी, आज मैंने अपनी लाज को धो बहाया। न जाने आज मैंने क्या-क्या बक डाला। मैं आज सङ्कोच की सीमा से बाहर हो गई। बातें कहना मेरे लिए उचित न था। क्रमशः उसके मन में ग्लानि और विषाद बढ़ने लगा। वह बाँह से अपने मुँह को छिपाकर सुरमा की गोद में सिर रखकर लेट रही। सुरमा सेर झुकाकर अपने कोमल हाथों से उसकी घनी चिकनी केशराशि को सुलझाने लगी। कुछ समय यों ही बीत गया। दोनों में कोई कुछ नहीं बोली। विभा की आँखों से आँसू टपक रहे थे। सुरमा धीरे-धीरे पोंछ रही थी।

विभा धीरे-धीरे उठ बैठी और आँखों के आँसू पोंछकर ज़रा हँसी। सुरमा कुछ न कहकर उसका हाथ पकड़े रही। पहले की कोई बात न छेड़कर सुरमा ने कहा—विभा! सुना है, दादाजी आये हैं?

विभा—सचमुच दादाजी आये हैं?

सुरमा—हाँ।

विभा ने बड़े आग्रह से पूछा—कब आये हैं?

सुरमा—शायद आज सबेरे।

विभा—अब तक वे हम लोगों को देखने नहीं आये?

विभा के मन में कुछ ग्लानि हो आई। दादाजी की मिलन-सारी के विषय में विभा बड़ी ही सावधान रहा करती है। इसका कारण यह है कि एक दिन वसन्तराय ने उदयादित्य के साथ बड़ी देर तक बातचीत करके विभा को तीन घड़ी तक भेंट के इन्तज़ार में रक्खा था। वे उसके साथ भेंट करने नहीं गये, इससे विभा के मन में ऐसा दुःख हुआ था। यद्यपि उस विषय में वह कुछ बोली नहीं, तथापि प्रसन्न मुख से दादाजी के साथ बातचीत नहीं की थी।

वसन्तराय ने घर में प्रवेश करते ही हँसते-हँसते गाना आरम्भ किया।

उस गीत का आशय यह था—आज बहुत दिनों के बाद तुम्हें देखने आया हूँ। कोई डर नहीं है, सुख से रहो, मैं यहाँ देर तक न ठहरूँगा। दो घड़ी में ही चला जाऊँगा। तुम्हारा मुखड़ा देखूँगा और मधुर वाणी सुनूँगा। ओट में खड़ा होकर तुम्हारी मुस्कुराहट देखूँगा, फिर परदेश को चला जाऊँगा।

गाना सुनकर विभा सिर नीचा करके हँसी। विभा को बड़ा ही हर्ष हुआ। इतना हर्ष हुआ कि उसका सँभालना कठिन हो पड़ा।

सुरमा ने विभा का मुँह ऊपर उठाकर कहा—दादाजी, विभा की हँसी देखने के लिए तो अब ओट में नहीं जाना पड़ा?

वसन्तराय—नहीं। विभा ने सोचा है कि एकदम न हँसने से यदि बुड्ढा न टले तो थोड़ा सा हँस ही दूँ। उस डाकिनी का मतलब मैं खूब समझता हूँ। मेरे भगाने का यह उसका कपट-कौशल है। किन्तु मैं जल्दी टलनेवाला नहीं। जब मैं आया हूँ तब भली भाँति उसे दग्ध करके ही जाऊँगा, फिर जितने दिन तक भेंट न होगी याद रहेगा।

सुरमा ने हँसकर कहा—यह देखिए दादाजा, विभा ने मेरे कान में कहा है कि यदि याद कराने ही का इरादा है तो जो इतने दिन तक दग्ध कर चुके हैं, वही याद रखने के लिए काफ़ी है। बार-बार जलाने की क्या ज़रूरत है?

यह सुनकर वसन्तराय को बड़ा ही विनोद हुआ। वे हँसने लगे।

विभा चिढ़कर बोली—नहीं, मैंने कुछ नहीं कहा है। भाभी ने अपनी ओर से झूठ बात बनाकर कही है।

सुरमा—दादाजी, आपकी अभिलाषा तो पूरी हुई न? आपने विभा की हँसी देखनी चाही सो देख ली, मधुर वचन सुनने की लालसा थी सो वह भी सुना। अब देशान्तर-गमन कीजिए।

वसन्तराय—नहीं, मैं अब न जाऊँगा। मेरे सिर में जितने पके बाल हैं, उन्हें एक-एक कर विभा से चुनवाऊँगा और

जितने नये गीत मुझे याद हैं सब विभा को पहले सुना लूँगा तब जाऊँगा।

विभा चुप न रह सकी; वह हँसकर बोली—दादाजी, तुम्हारे आधे सिर में तो बाल ही नहीं हैं।

दादाजी का मनोरथ सफल हुआ। बहुत दिनों के बाद विभा से भेंट होने पर हज़ार बार पूछने से भी कदाचित् विभा न बोलती थी। उसका यह एक विचित्र स्वभाव था, फिर जहाँ उसका एक बार मुँह खुला, तहाँ बुलाने की अपेक्षा उसका मुँह बन्द करने ही के लिए अनक प्रयत्न करने पड़ते थे। विशेषकर विभा का यह स्वभाव दादाजी के निकट पूर्ण रूप से चरितार्थ होता था।

वसन्तराय अपने केशशून्य चिकने माथे पर हाथ फेरकर बोले—वह ज़माना अब न रहा। जिस दिन वसन्तराय का माथा केशों से भरा था उस दिन इतना लम्बा रास्ता पार करके तुम लोगों की ख़ुशामद करने की क्या ज़रूरत थी? तब तो एक बाल के पकने पर तुम्हारी ऐसी पाँच सुन्दरियाँ बाल चुनने के लिए उत्सुक होती थीं और चित्त की व्यग्रता से दस कच्चे बाल पके के भ्रम से उखाड़ डालती थीं।

विभा ने गम्भीरता से पूछा—अच्छा, दादाजी, जब तुम्हारे माथे पर ख़ूब बाल थे तब क्या तुम अब से देखने में अच्छे थे?

इस विषय में विभा के मन में भारी सन्देह था।

वसन्तराय ने कहा—इस विषय में बहुत मतभेद है। मेरी नतनी और पोती मेरा गञ्जा सिर देखकर ही मोहित होती हैं। क्योंकि उन्हें मेरे काले बालों के दर्शन होने का अवसर नहीं मिलता। मेरी नानी मेरे भौंरे से काले बाल देखकर मुग्ध होती थी। उन्हें मेरा गञ्जा सिर देखना नसीब नहीं हुआ। जिन्होंने मेरे मस्तक की केशराशि की दोनों अवस्थाएँ देखी हैं, वे अब भी निर्णय नहीं कर सकतीं कि दोनों में कौन उत्तम है।

विभा मुसुकुराकर बोली—आप चाहे जो कहिए, पर आपके जितने बाल अभी उड़ चुके हैं, उससे अधिक उड़ने पर आपका चेहरा ऐसा सुन्दर न रहेगा।

सुरमा—दादाजी, श्वेत-कृष्ण की आलोचना पीछे होती रहेगी, पहले विभा का तो कोई उपाय कर दीजिए।

विभा झट वसन्तराय के पास जा बैठी और बोली—दादाजी, मैं आपके पके बालों को अभी चुन देती हूँ।

सुरमा—मैं अभी कुछ कहने भी न पाई, तुम बीच ही में क्यों बाधक बन बैठीं?

सुरमा की बात पर ध्यान न देकर विभा वसन्तराय से कहने लगी—सुनो दादाजी, तुम्हारा—

सुरमा—विभा, तुम मुझको कुछ कहने दोगी या नहीं मैं! इनसे क्या कह रही हूँ और तुम इनके पास जाकर—

विभा—सुनो दादाजी, तुम्हारे सिर में पके बालों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इनको चुन डालने से तो सारा मस्तक करतल सा चिकना हो जायगा।

वसन्तराय—यदि तू मुझे सुरमा की बात सुनने न देगी तो मैं अभी हिंडोल-राग गाना आरम्भ कर दूँगा। यह कहकर उन्होंने सितार की सुन्दरी पर हाथ फेरना शुरू किया। विभा को हिंडोल-राग से बड़ी चिढ़ थी।

"हिंडोल-राग गाओगे तो मैं अभी यहाँ से भाग जाऊँगी", यह कहकर विभा वहाँ से बाहर चली गई।

विभा के चले जाने पर सुरमा ने कहा—विभा मन ही मन चुपचाप जो कष्ट सहती है, उसे जानकर महाराज के हृदय में भी दया उपज आयेगी।

"अयँ, विभा को कष्ट है?" यह पूछते हुए वसन्तराय बड़ी फुर्ती से उठकर सुरमा के पास जा बैठे।

सुरमा—वर्ष भर में दुलहाजी को एक बार भी बुलाना किसी को उचित नहीं जान पड़ता।

वसन्तराय—तुम ठीक कहती हो।

सुरमा—आप ही कहिए, इस प्रकार स्वामी का अपमान कौन स्त्री सह सकती है? विभा बड़ी सुशीला है। इस कारण वह किसी से कुछ नहीं कहती। पर वह दिन-रात सोच के मारे मरी जाती है और चुपचाप रोती है।

वसन्तराय—ओह! वह सोच से मरी जाती है। चुपचाप रोती है।

सुरमा—आज मेरे पास बैठकर कितना रोती थी।

वसन्तराय—ओफ़! विभा आज तुम्हारे पास बैठकर रोती थी?

सुरमा—हाँ।

वसन्तराय ने कहा—आह, उसे एक बार यहाँ बुला लाओ। मैं उसे देखूँगा।

सुरमा विभा को पकड़ लाई। वसन्तराय ने विभा का हाथ पकड़कर पूछा—तू क्यों रोती है? तुझे जब जो तकलीफ़ हो वह मुझसे क्यों नहीं कहती? मैं उस दुःख के निवारण की यथासाध्य चेष्टा करूँगा। मैं अभी जाता हूँ, प्रताप से कहे देता हूँ।

विभा बोली—दादाजी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। मेरे विषय में पिताजी से कुछ न कहना। दादाजी, मैं पाँव पड़ती हूँ। मत जाओ।

वह कहती ही रह गई। वसन्तराय वहाँ से बाहर चले गये। उन्होंने प्रतापादित्य से जाकर कहा—तुमने अपने जामाता को बहुत दिनों से नहीं बुलाया है। इससे उनका बड़ा ही अपमान होता है। यशोहराधीश के जामाता का जितना सम्मान होना चाहिए उतना न हो तो इसमें तुम्हारी ही अप्रतिष्ठा है। इसमें कुछ बड़प्पन नहीं है।

प्रतापादित्य ने उनकी बात में कुछ काट-छाँट न की। आदमी के द्वारा चन्द्रद्वीप को पत्र भेजने का हुक्म हुआ। वसन्तराय अन्दर गये। उन्होंने विभा और सुरमा के पास पहुँचकर सितार बजाने की धूम मचा दी।

विभा ने लजाकर कहा—दादाजी, क्या पिताजी से मेरी सब बातें कह डालीं?

वसन्तराय कुछ उत्तर न देकर गीत गाने लगे।

विभा ने सितार के तारों पर हाथ रखकर सितार की आवाज़ को बन्द करके फिर कहा—क्या पिताजी के आगे मेरी बातें कह डालीं?

इसी समय उदयादित्य का छोटा भाई समरादित्य, जो आठ वर्ष का था, घर में आ करके बोला—हाँ बहन! दादाजी के साथ खूब बातें कर रही हो! मैं जाकर माँ से कहे आता हूँ।

आओ, आओ, भैया आओ, कहकर वसन्तराय ने उसे पकड़ लिया।

राजसम्बन्धियों की यही धारणा थी कि वसन्तराय और सुरमा यही दोनों उदयादित्य को बहकाते हैं। इस कारण वसन्तराय के आते ही राजधानी के सब लोग सावधान हो जाते थे।

समरादित्य ने वसन्तराय का हाथ छुड़ाने की बड़ी-बड़ी चेष्टा की। किन्तु वसन्तराय ने उसको सितार देकर, उसे कन्धे पर चढ़ाकर और चश्मा पहनाकर कुछ ही देर में ऐसा वश में कर लिया कि वह सारे दिन उनके पीछे-पीछे घूमने लगा। समरादित्य ने उनका सितार बजाकर पाँच तार तोड़ डाले और उनकी उँगली से मेजराब निकालकर ले ली।

———

*

सातवाँ परिच्छेद

चन्द्रद्वीप के राजा रामचन्द्र राय अपने सजे हुए कमरे में गद्दी पर मसनद के सहारे बैठे हैं। पास ही दीवान हरिशङ्कर बैठे हैं। राजा के दहनी ओर रमाई विदूषक और चश्मा लगाये सेनापति फर्नान्डिज़ बैठे हैं।

राजा ने कहा—रमाई !

रमाई—(मुँह बनाकर) जी हुज़ूर।

रमाई का विकृत मुँह देखकर राजा हँसते-हँसते लोट गये। मन्त्री राजा को अपेक्षा भी अधिक हँसे।

राजा ने पूछा—क्या ख़बर है ?

रमाई ने मुँह बनाकर कहा—सरकार, सुना है कि सेनापति महाशय के घर में चोर पैठा था।

सेनापति यह सोचकर घबरा उठे कि रमाई कोई पुरानी गप्प छेड़कर उनकी हँसी न उड़ावे। वे रमाई के परिहास से जितना ही डरते हैं उतना ही रमाई उनको भरे दरबार में बनाता है।

राजा ने आँखें मूँदकर रमाई से पूछा—हाँ, उसके बाद।

रमाई—हुज़ूर अर्ज़ करता हूँ। तीन-चार दिन से सेनापति के घर में चोर रात को बराबर आमद-रफ़्त कर रहा था। साहब की गृहिणी ने साहब को जगाने की कितनी ही चेष्टाएँ कीं, पर उनकी नींद न टूटी। उन्होंने सोने में कुम्भकर्ण को भी जीत लिया।

राजा और मन्त्री हँसते-हँसते लोटपोट हो गये। उन दोनों को हँसते देख सेनापति भी कृत्रिम हँसी हँसे। दिन को जब सेनापति अपनी स्त्री का ताना नहीं सह सके, तब उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—क्षमा करो, मैं आज रात में ज़रूर चोर को पकड़ूँगा। दो घड़ी रात बीतने पर चोर उनके घर आ पहुँचा।

सेनापति की गृहिणी ने कहा—देखो, देखो, वह चोर आया। सेनापति ने कहा—अभी चोर ? घर में चिराग़ जल रहा है, चोर हम लोगों को देखकर आप ही भाग जायगा। उन्होंने चोर को पुकार कर कहा—आज तू बच गया। चिराग़ की रोशनी से सारे घर में उजेला है। आज तू बेखटके भाग जा। कल आ तो तेरी हिम्मत देखूँ ? देखें, कल अँधेरे में कैसे भागेगा।

राजा ने ख़ूब ज़ोर से हँसकर कहा—उसके बाद।

रमाई ने देखा कि राजा को अभी इन बातों से तृप्ति नहीं हुई। अतएव वह फिर कहने लगा—न मालूम चोर को किस कारण अधिक भय न हुआ। वह दूसरे दिन फिर रात में उनके घर आया। स्त्री ने सेनापति को जगाया। उठो, उठो, सर्वनाश हुआ।

सेनापति ने कहा—तुम क्यों नहीं उठतीं ?

स्त्री—मैं उठकर क्या करूँगी ?

सेनापति—चिराग़ जलाओ। अँधेरे में कुछ दिखाई नहीं देता। सेनापति की बात से उसकी स्त्री बहुत नाराज़ हुई। वे उससे और अधिक क्रुद्ध होकर बोलीं—तुम्हारे ही कारण सर्वनाश हुआ। जब तुम चोर के आने की बात जानती ही थीं तो पहले ही से तुमने रोशनी का प्रबन्ध क्यों नहीं कर रक्खा ! जल्द चिराग़ जलाओ और बन्दूक़ लाओ। इतने में चोर ने अपना काम करके कुछ दूर हटकर कहा—साहब, एक चिलम तम्बाकू मेहरबानी करके दीजिए। बड़ी मेहनत का काम किया है। साहब ने ज़ोर से डपटकर कहा—ठहरो साले, मैं तुम्हें तम्बाकू पिलाता हूँ। ख़बरदार, मेरे पास आओगे तो इसी बन्दूक़ से तुम्हारा सिर उड़ा दूँगा। तम्बाकू पीकर चोर ने कहा—घर में रोशनी कर देते तो विशेष उपकार होता। सेंध काटकर किधर से आया हूँ उसका पता नहीं लगता। सेनापति ने कहा—साले डर गये। वहीं खड़े रहो। पास मत आओ। यह कहकर

साहब ने झटपट दिया जला दिया। चोर बड़े मज़े में सब चीज़ें लेकर चला गया। साहब ने घरवाली से कहा—साले को आज ख़ूब ही छकाया है। साला एकदम ही डरकर भाग गया।

राजा और मन्त्री हँसी न सँभाल सके। हँसते-हँसते बेदम हो गये। फर्नांण्डिज़ ठहर-ठहरकर बीच-बीच में "हीः हीः" करके टूटी हँसी हँसने लगे।

राजा ने कहा—रमाई, तुमने सुना है न? मैं ससुराल जाने-वाला हूँ।

रमाई ने मुँह बनाकर कहा—असारं खलु संसारं सारं श्वशुर-मन्दिरम्। ससुर के मन्दिर में सभी सार—भोजन, शयन, सम्मान, सभी सार पदार्थ है। असार है केवल एक स्त्री।

राजा ने हँसकर कहा—क्या तुम्हारी अर्धाङ्गिनी तुमसे—

रमाई ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, उसे अर्धाङ्गिनी न कहें। तीन जन्म तपस्या करने पर भी शायद मैं उसके अर्धाङ्ग के बराबर न हो सकूँगा। मेरे सदृश पाँच व्यक्ति एकत्र होने पर भी उसके अर्धाङ्ग की समता न कर सकेंगे।

रमाई की बात सुनकर दर्बार के सभी लोग हँस उठे। रमाई की बात का मर्म सब सहज ही में समझ गये। सिर्फ़ मन्त्री की समझ में न आया। इसी से वे और लोगों की अपेक्षा अधिक हँसे।

राजा ने कहा—मैंने सुना है, तुम्हारी ब्राह्मणी बड़ी ही सुशीला और गृहकृत्य में चतुर है।

रमाई—मैं इस विषय में क्या अर्ज़ करूँ। मेरे घर में एक से एक बढ़कर है। मैं क्षण भर भी घर में ठहरने नहीं पाता। तड़के ही ब्राह्मणी ऐसी फटकार बताती है कि भागने का रास्ता नहीं सूझता। जब महाराज की ड्योढ़ी पर आता हूँ तब कहीं जी ठिकाने आता है।

हास्यलीला समाप्त होने पर राजा ने रमाई से कहा—तुमको मेरे साथ चलना होगा। सेनापति को भी मैं अपने साथ ले चलूँगा।

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने समझा, यह इशारा पाकर रमाई फिर उन पर वाक्य-बाण छोड़ेगा। वे चश्मा उतारकर फिर उसे पहनने और कोट के बटन देखने लगे।

रमाई—सेनापति को जलसे की जगह जाने में कोई आपत्ति न होगी; क्योंकि वह लड़ाई का मैदान तो है नहीं।

राजा ने यह सोचकर कि बात बड़े मज़े की निकली है, आग्रह के साथ रमाई से पूछा—क्यों? सेनापति जलसे की जगह में जाना क्यों पसन्द करेंगे?

रमाई—साहब की आँखों में दिन-रात चश्मा लगा रहता है। सोते समय भी चश्मा उनकी आँखों पर चढ़ा ही रहता है। यदि चश्मा उनकी आँखों पर न रहे तो उन्हें अच्छे-अच्छे सपने देखने को न मिलें। सेनापति साहब को लड़ाई में भी जाने में कोई बाधा नहीं। भय उन्हें केवल इसी बात का बना रहता है कि काँच का चश्मा गोली लगकर कहीं फूट न जाय। कहिए साहब, यही बात है न?

सेनापति ने सिटपिटाकर कहा—जी हाँ, यही बात है।

सेनापति उठकर खड़े हुए। उन्होंने महाराज से निवेदन किया—हुक्म हो तो मैं घर जाऊँ।

राजा—आपको हमारे साथ यशोहर चलना होगा। जल्द तैयार होकर आइए। हमारी यात्रा का सब सामान ठीक करें; हमारे लिए चौंसठ डाँड़वाली नाव तैयार रहे।

मन्त्री और सेनापति चले गये।

राजा ने कहा—रमाइ, तुमने तो सब सुना ही होगा। उस मरतबा ससुराल में उन लोगों ने मुझे ख़ूब हो बनाया था।

रमाई—जी हाँ, सुन चुका हूँ। महाराज के पीछे दुम लटका दी थी।

यह सुनकर राजा हँसे। उनकी दन्त-पंक्ति की शोभा बिजली की तरह चमक उठी सही, पर उनके मन में भारी चिन्ता छा गई।

यह ख़बर रमाई को मिल गई है, यह जानकर उन्हें विशेष प्रसन्नता न हुई। और किसी के पास इस ख़बर के ज़ाहिर होने में उतनी हानि न थी। वे चुपचाप गुड़गुड़ी गुड़गुड़ाने लगे।

रमाई ने कहा—आपके एक साले ने मुझसे आकर कहा था कि कौतुकागार (कोहबर) में तुम्हारे राजा के एक लम्बी पूँछ निकल आई थी। वे रामचन्द्र नहीं बल्कि राम-दूत हनुमान् हैं, ऐसा तो पहले नहीं जान पड़ा था। तब मैंने तुरन्त कहा—पहले किस तरह जानते ? पहले तो कुछ था नहीं। तुम्हारे घर शादी करने आये हैं इसी से 'यस्मिन् देशे यदाचारः' का अवलम्बन किया है।

इस उत्तर को सुनकर राजा बड़े ही ख़ुश हुए। सोचा कि रमाई के द्वारा मेरे पूर्वजों का और मेरा मुँह उज्ज्वल हुआ

युद्ध-विग्रह का विषय राजा कुछ जानते ही नहीं थे। इन्हीं सब छोटी-मोटी घटनाओं को वे भारी युद्ध-विग्रह की तरह सोचते थे। इतने दिनों तक उनके मन में धारणा थी कि उनका अपमानसूचक भारी पराजय हुआ है। यह कलङ्क की बात दिन-रात उनके हृदय को सन्तप्त किये रहती थी और मारे लज्जा के वे धरती से फट जाने का अनुरोध करते थे। आज उनके मन में बड़ी तसल्ली हुई कि सेनाध्यक्ष रमाई लड़ाई जीतकर आया है। तथापि उनके मन से लज्जा का बोझ एकदम दूर न हुआ।

राजा ने रमाई से कहा—इस बार जाकर विजय प्राप्त करनी होगी। अगर तुम्हारी जीत होगी तो तुमको अपनी अँगूठी इनाम दूँगा।

रमाई ने कहा—हुजूर, जीत की चिन्ता क्या ? रमाई को यदि अन्दर महल में ले जा सकें तो ख़ुद सास महारानी साहिबा को पेट भर मट्ठा पिलाकर आ सकता हूँ।

राजा ने कहा—यह कौन बड़ी बात है ? मैं तुमको मज़े में अन्दर ले जाऊँगा।

रमाइ—आपके लिए क्या असाध्य है ?

राजा को भी ऐसा ही विश्वास था। वे क्या नहीं कर सकते ?

चन्द्रद्वीप के राजा ने राजमोहन माल को भी बुला भेजा। राममोहन माल पराक्रम में भीम के समान था। उसके शरीर की लम्बाई पूरे साढ़े चार हाथ थी। शरीर की गठन सुडौल थी। उसने रामचन्द्र को बचपन से गोदी खिलाया है। रमाई किसी से डरता है तो इसी राममोहन से। राममोहन रमाई को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखता था। रमाई उसकी घृणा-दृष्टि से आप ही आप एक तरह शरमिन्दा हो पड़ता था। राममोहन की दृष्टि से बचकर ही वह रहना चाहता था। राममोहन आ खड़ा हुआ। राजा ने कहा—मेरे साथ पचास आदमी जायँगे। राममोहन तुम उन लोगों के प्रधान होकर चलना।

राममोहन ने कहा—जो आज्ञा। क्या रमाई बाबू भी जायँगे ?

विडालनेत्र, छोटे डील के रमाई बाबू यह सुनकर सकपका गये।

आठवाँ परिच्छेद

यशोहर के राजभवन में आज कर्मचारी बड़े व्यग्र हैं। आज दुलहाजी आवेंगे। तरह-तरह की तैयारियाँ हो रही हैं। खाने-पीने की चीज़ों का विशेष रूप से आयोजन हो रहा है। चन्द्रद्वीप का राजवंश यशोहर के आगे महज़ मामूली है—इस विषय में प्रतापादित्य के साथ महारानी का कोई मतभेद न था, तथापि जामाता आवेंगे, इस ख़याल से उन्हें अत्यन्त उल्लास हो रहा है। भोर ही से उन्होंने अपने हाथ से विभा का शृङ्गार करना आरम्भ किया। विभा बड़ी कठिनाई में पड़ गई। कारण, शृङ्गार के सम्बन्ध

में बुढ़िया माता के साथ युवती बेटी का बहुत कुछ रुचिभेद था। किन्तु रुचिभेद होने से होता क्या है। विभा कुछ समझे, पर रानी ज़रूर अच्छा समझती थीं कि विभा का भला किस बात में है। विभा की धारणा थी कि फ़िरोज़ी रङ्ग की तीन-तीन पतली चूड़ियाँ उसके गोरे-गोरे कोमल हाथों में बड़ी शोभा देंगी। किन्तु माँ उसको सोने की आठ-आठ मोटी सी चूड़ियाँ और एक-एक बड़े फाँद का हीराजड़ित कँगना दोनों हाथों में पहनाकर इतनी अधिक प्रसन्न हो उठीं कि वह शोभा देखने के लिए राजभवन की समस्त बूढ़ी दासियों और विधवा फूफी तक को बुला भेजा। विभा जानती थी कि मेरे छोटे से सुकुमार मुँह में नथ किसी तरह नहीं फबती। परन्तु माँ उसको एक बड़ी नथ पहनाकर उसके मुँह को एक बार दहनी ओर और एक बार बाईं ओर घुमाकर बड़ी उत्सुकता के साथ देखने लगी। इसमें भी विभा कुछ न बोली, किन्तु माँ ने जिस ढङ्ग पर उसके बाल बाँधे वह रीति उसे एकबारगी नापसन्द थी। वह चुपचाप सुरमा के पास जाकर अपनी पसन्द के बाल बँधवा आई। किन्तु उसे वह अपनी माँ की नज़र से बचा न सकी। रानी ने देखा, केवल बाल बाँधने के दोष से विभा की सारी शोभा मिट्टी में मिल गई है। उन्हें साफ़ देख पड़ा कि सुरमा ने डाह करके विभा की शोभा, इस तरह से बाल बाँधकर, ख़राब कर दी है। उन्होंने सुरमा के इस खोटे अभिप्राय पर विभा की आँखें खोलने की चेष्टा की। बड़ी देर तक बककर जब वे स्थिर हुईं, तब उसके बालों को खोलकर फिर पहले की तरह बाँध दिया। इस प्रकार विभा अपना जूड़ा, अपनी नथ, अपनी चूड़ियाँ और अपने एक हृदय-पूर्ण नवीन उत्साह का भार लेकर बड़ी बेचैन हो गई। वह समझ रही थी कि इस दुरन्त हर्ष को मैं किसी प्रकार अन्दर महल में छिपाकर नहीं रह सकती। बिजली की तरह सहसा उसकी आँखों से और मुँह से आह्लाद की छटा निकली

पड़ती थी। उसके मन में होता था कि घर की दीवालें तक मेरे शृङ्गार का उपहास करने को उद्यत हैं। युवराज उदयादित्य ने अन्दर महल में आकर गम्भीर प्रेमपूर्ण आनन्द के साथ विभा का सलज्ज विकसित मुँह देखा। विभा का हर्ष देख उनके मन में इतना आनन्द हुआ कि मारे उल्लास के घर में जाकर उन्होंने स्नेह-पूर्वक मधुर मृदु हँसी हँसते हुए सुरमा का मुँह चूमा।

सुरमा ने पूछा—क्या ?

उदयादित्य—कुछ तो नहीं।

इसी समय वसन्तराय विभा को खींचकर घर में ले आये। उन्होंने ठुड्डी पकड़कर उसका मुँह ऊपर उठाकर कहा—लो भाई, एक बार तुम अपनी विभा का मुख तो देख लो। सुरमा, अरी सुरमा! एक बार यहाँ आकर देख जा।

जमाई के स्वागत-सत्कार का कुछ विशेष आयोजन नहीं हुआ। प्रतापादित्य जमाई को इतना सम्मान देना न चाहते थे।

रामचन्द्र राय को बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने समझा कि जान-बूझकर ही हमारा अपमान किया गया है। इसके पहले दो-एक बार हमको अगवानी करके ले जाने के लिए राजभवन से चकदह में लोग भेजे गये थे। इस बार चकदह पार होकर दो कोस आने पर बामनहाटी में दीवानजी उनके स्वागत के लिए आये। अगर दीवानजी आये तो उनके साथ सौ-दो सौ और लोग क्यों नहीं आये ? सारे यशोहर में क्या पचास आदमी भी यहाँ आने के लिए नहीं मिले ? राजा को लाने के लिए जो हाथी आया वह, रमाई की राय में, स्थूलकाय दीवानजी की अपेक्षा कहीं छोटा था। रमाई ने दीवान से पूछा—महाशय, मालूम होता है वह आपका छोटा भाई है ? सज्जन दीवानजी ने कुछ विस्मित होकर उत्तर दिया—जी नहीं, वह हाथी है।

राजा (रामचन्द्र राय) ने क्षुब्ध होकर दीवानजी से कहा—तुम्हारे मन्त्री जिस हाथी पर चढ़ते हैं वह भी इसकी अपेक्षा बड़ा है।

दीवानजी ने कहा—जितने बड़े हाथी थे वे राजकीय कार्य से दूर भेजे गये हैं। यशोहर में इस समय एक भी हाथी नहीं है।

रामचन्द्र राय ने समझा कि हमारा अपमान करने ही के लिए सब हाथी अन्यत्र भेज दिये गये हैं, नहीं तो भेजने का और कारण ही क्या था ?

राजा रामचन्द्र राय के नेत्र मारे क्रोध के लाल हो गये। वे आप ही आप बोल उठे—प्रतापादित्य से मैं किस बात में न्यून हूँ।

रमाई—उम्र में और सम्बन्ध में; और किसी भी अंश में नहीं। आपने उसकी लड़की को ब्याहा, इसी से—

राममोहन माल वहीं खड़ा था। उसे रमाई की बात सहन न हुई। वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोला—रमाई, तुम बहुत बढ़कर बातें कहते जा रहे हो। महाराज प्रतापादित्य की कन्या हम लोगों की स्वामिनी हैं। ख़बरदार ! उनके विषय में कोई बात अनुचित बोलोगे तो तुरन्त उसका फल पाओगे।

राममोहन को क्रुद्ध देखकर रमाई ने विभा की बात छोड़कर प्रतापादित्य की ओर लक्ष्य करके कहा—ऐसे आदित्य बहुतेरे देखे हैं। महाराज भी इसे बखूबी जानते हैं। जो आदमी आदित्य को बिल्ली की तरह बग़ल में दबाकर रख सकता है, वह चन्द्रद्वीप के राजा रामचन्द्र का सेवक है।

राजा रुमाल से मुँह छिपाकर हँसने लगे। राममोहन क्रोध से अधीर हो हाथ जोड़कर बोला—महाराज, यह आदमी आपके ससुर को इस तरह अनुचित कहे, यह मैं नहीं सुन सकता। आपकी आज्ञा हो तो इस ख़ुशामदी कुत्ते का मुँह अभी बन्द कर दूँ।

राजा ने कहा—राममोहन, ज़रा तुम ठहर जाओ।

राममोहन वहाँ से टलकर दूर चला गया।

रामचन्द्र ने उस दिन हज़ारों बार मनःकल्पित विवादों की आलोचना करके स्थिर किया कि प्रतापादित्य ने हमारा अपमान करने के लिए बहुत दिनों से बड़ी आयोजना है। मारे ग्लानि के रामचन्द्र बहुत व्यग्र हो उठे। उन्होंने निश्चय किया कि प्रतापादित्य के आगे हम ऐसा स्वरूप धारण करेंगे जिसमें वे समझ लें कि उनके दामाद भी कुछ ऐसे-वैसे नहीं हैं।

जब प्रतापादित्य के साथ रामचन्द्र राय की मुलाक़ात हुई तब प्रतापादित्य बैठक में अपने मन्त्री के साथ बैठे थे। उनको देखते ही रामचन्द्र ने सिर नवाकर धीरे-धीरे उनके पास जाकर प्रणाम किया।

प्रतापादित्य ने विशेष उल्लास या व्यग्रता का भाव प्रकाश न करके शान्त भाव से कहा--आओ, अच्छे तो हो?

रामचन्द्र ने धीरे से कहा—जी हाँ।

मन्त्री की ओर देखकर प्रतापादित्य ने कहा—भाङ्गामाथा परगने के तहसीलदार के नाम जो नालिश आई थी उसका क्या हुआ?

मन्त्री ने एक बड़ा लम्बा सा काग़ज़ निकालकर राजा के हाथ में दिया। राजा पढ़ने लगे। कुछ दूर तक जब पढ़ गये तब उन्होंने एक बार आँख उठाकर जमाता से पूछा—पारसाल की तरह इस बार तुम्हारे यहाँ बाढ़ तो नहीं आई?

रामचन्द्र—जी नहीं, आश्विन के महीने में एक बार जलवृद्धि—

"दीवान, इस पत्र की एक नक़ल ज़रूर अपने पास रख लेनी होगी।" यह कहकर प्रतापादित्य फिर पढ़ने लगे। पढ़ना समाप्त करके जमाता से कहा—जाओ, अन्दर जाओ।

रामचन्द्र धीरे-धीरे उठे। वे अपने मन में यही समझ रहे थे कि प्रतापादित्य हमसे किसी अंश में बड़े नहीं।

——

नवाँ परिच्छेद

राममोहन माल ने जब अन्तःपुर में प्रवेश करके विभा को प्रणाम किया और कहा—माँ, मैं तुम्हें देखने आया हूँ, तब विभा के मन में बड़ा हर्ष हुआ। राममोहन को वह बहुत चाहती थी। घर के अनेक काम रहते भी राममोहन कभी-कभी चन्द्रद्वीप से अकसर यशोहर आता था। कोई आवश्यक काम न रहने पर भी, समय मिल जाने पर, वह विभा को देखने आता था। राममोहन को देखकर विभा कुछ भी लज्जा नहीं करती थी। लम्बे डील का बलिष्ठ राममोहन जब "माँ" कहकर खड़ा होता तब उसके हृदय में एक ऐसा विशुद्ध, निश्छल, अभिमानशून्य स्नेह का भाव उदय होता था कि विभा उसके सम्मुख अपने को बिलकुल बालिका समझती थी। विभा ने कहा—तुम इतने दिनों से क्यों नहीं आते थे?

राममोहन—सुनो माँ, पुत्र कुपुत्र हो जाता है, पर माता कुमाता नहीं होती। तुमने कब मेरा स्मरण किया? मैंने यही सोचा कि माँ जब तक मुझे न बुलावेगी, मैं न जाऊँगा। देखूँ तो कब तक वह मेरा स्मरण करती है। पर क्या कहूँ, आपने एक बार भी तो मेरा स्मरण नहीं किया!

विभा बड़ी कठिनता में पड़ गई। उसने राममोहन को क्यों नहीं बुलाया, इसका वह कोई अच्छा जवाब न दे सकी। विभा ने स्मरण न होने ही के कारण राममोहन को नहीं बुलाया, यह बात नहीं है। न बुलाने का वह युक्तियुक्त कोई कारण बतलाना चाहती है, पर उसे वह अच्छी तरह कहकर समझा नहीं सकती।

विभा को चिन्तित देख राममोहन ने हँसकर कहा—नहीं माँ, आप कुछ चिन्ता न करें। समय नहीं मिला, इसी से मैं नहीं आया।

विभा ने प्रसन्न होकर कहा—मोहन बैठो, अपने देश का हाल कहो।

राममोहन बैठकर चन्द्रद्वीप का वर्णन करने लगा। विभा गाल पर हाथ रखकर एकाग्र मन से सुनने लगी। चन्द्रद्वीप का वर्णन सुनकर विभा के मन में कैसे-कैसे भावों का उदय होता था, यह दूसरा कोई कैसे समझ सकता है? फिर राममोहन ने बाढ़ आने की बात कही। गत वर्ष उसका घर पानी में डूब गया था। सन्ध्या होने के पहले वह अपनी वृद्धा माँ को पीठ पर लेकर तैरता हुआ मन्दिर की छत पर चढ़ गया और वहीं उन दोनों ने सारी रात बिता डाली। यह सुनकर विभा का छोटा-सा कोमल हृदय काँप उठा।

चन्द्रद्वीप का वर्णन समाप्त होने पर राममोहन ने बड़े विनीत भाव से कहा—माँ, तुम्हारे लिए मैं संखा-चूड़ी लाया हूँ। तुम इसे पहनो। मैं देखकर अपने नयनों को तृप्त करूँ।

विभा ने अपने हाथों से सोने की दो दो चूड़ियाँ निकाल डालीं, और राममोहन की दी हुई संखा-चूड़ी पहनकर वह हँसते-हँसते माँ के पास आकर बोली—माँ, मोहन ने मेरे हाथों से तुम्हारी चूड़ी निकलवाकर संखा-चूड़ी पहनाई है।

रानी ने इससे नाराज़ न होकर मुसकुराकर कहा—बेटी, राममोहन आ गया? अच्छा किया, जो तुमने उसके हाथ की दी चूड़ियाँ पहन लीं। देखने में बुरी नहीं लगतीं।

रानी के मुँह से इतनी बात सुनकर राममोहन बहुत ख़ुश हुआ। मानो उसने इतने ही में अपनी कृतज्ञता का पूरा पुरस्कार पा लिया। रानी उसको अपने महल में बुला ले गईं और उन्होंने उसे अपने सामने बैठाकर भोजन कराया। जब वह तृप्तिपूर्वक भोजन कर चुका तब रानी ने प्रसन्न होकर कहा—मोहन, तुमने जो उस दफ़े गीत गाया था वह गाओ तो।

राममोहन विभा के मुँह की ओर देखकर गाने लगा।

गाते-गाते उसकी आँखों में आँसू भर आये। विभा का मुँह देखकर रानी भी अपनी आँखों के आँसू नहीं रोक सकीं। राममोहन के उस गाने से रानी को विजया का स्मरण हो आया।

सूर्यास्त होने का समय हुआ। अड़ोस-पड़ोस की झुण्ड की झुण्ड स्त्रियाँ जामाता को देखने और सम्बन्धानुसार उसके साथ परिहास करने के लिए अन्तःपुर में एकत्र होने लगीं। हर्ष, सङ्कोच और आशङ्का ये तीनों मिलकर विभा के मन में एक अपूर्व भाव उत्पन्न कर रहे थे। न मालूम आज क्या होगा, इस अनिश्चित भाव से विभा का हृदय काँप रहा था। मुँह और कान लाल हो गये थे। हाथ-पैर शिथिल से हो रहे थे। कौन जाने, यह कष्ट था कि सुख?

जमाई अन्तःपुर में विराजमान हैं। ठट्ठ की ठट्ठ स्त्रियाँ सौन्दर्य-राशि की तरह चारों ओर से दुलहाजी को घेरकर बैठी हैं। चारों ओर हँसी की धूम मची है। चारों ओर से दुलहे पर कोकिल कण्ठ का मृदु परिहास, कमल-नाल-सदृश कोमल बाहुओं का ताड़न और चम्पक-पुष्पोपम उँगलियों के स्वच्छ नखों का आघात होने लगा। चारों ओर से ललनाएँ चुटकियाँ भरने लगीं। रामचन्द्र राय जब एकदम घबरा उठे तब एक अधेड़ स्त्री उनका पक्ष लेकर बैठी। उसके मुँह से ऐसी-ऐसी कठोर और कड़ुई बातें निकलने लगीं, ऐसे-ऐसे अश्लील वाक्यों की वर्षा होने लगी, जिन्हें सुनकर गाँव की जितनी स्त्रियाँ आई थीं सब की सब मारे गुस्से के लाल-पीली होती हुई घर से चली गईं। घर ख़ाली हो गया। रामचन्द्र राय की जान में जान आई।

तब वह अधेड़ स्त्री उस घर से निकलकर रानी के घर में गई। वहाँ रानी अपने नौकर-नौकरानियों को खिला-पिला रही थी। राममोहन भी एक ओर बैठकर खा रहा था। वह अधेड़ स्त्री रानी के पास आकर और उनके मुँह की ओर अच्छी तरह

देखकर बोली—"यह राक्षसों की जननी है।" यह सुनते ही राम-मोहन चौंक उठा। उसने एक बार प्रौढ़ा के मुँह की ओर देखा। फिर तुरन्त भोजन छोड़कर बाघ की तरह उछल और उसके दोनों हाथ वज्रमुट्ठी से पकड़कर बोल उठा—"बामन, मैं तुझे पहचानता हूँ।" यह कहकर उसने उसके माथे पर का कपड़ा खींच लिया। देखा, यह दूसरा कोई नहीं, वही रमाई है। राममोहन क्रोध से काँपने लगा। अपनी देह पर की चादर नीचे रख दी। दोनों हाथों से खेल की तरह उसने अनायास रमाई को ऊपर उठा लिया और कहा—आज मेरे हाथ से तुम्हारा मरण लिखा है। अब उसने दो-एक बार ऊपर ही ऊपर उसे घुमाया। रानी दौड़ी आई और बोली—राममोहन, तुम क्या कर रहे हो?

रमाई ने अधीर होकर कहा—दुहाई बाबूजी की, ब्रह्महत्या न करो। चारों ओर से भारी हल्ला उठ खड़ा हुआ। तब राममोहन ने रमाई को नीचे पटककर काँपते-काँपते कहा—अभागा कहीं का, तुझे मरने को और कोई जगह न थी?

रमाई ने कहा—महाराज ने मुझे आज्ञा दी थी।

राममोहन—क्या कहा, नमकहराम? फिर ऐसी बात ज़बान से निकालेगा तो इसी पत्थर पर तेरा मुँह रगड़ दूँगा। यह कहकर उसका गला दबाकर पकड़ा।

रमाई चिल्ला उठा। तब राममोहन उस लघुकाय दुबले-पतले रमाई को चादर में लपेटकर, बस्ते की तरह हाथ में लटकाकर, झुलाता हुआ अन्तःपुर से बाहर निकल गया।

थोड़ी ही देर में यह बात सर्वत्र फैल गई। रात आधी से भी अधिक बीत चुकी थी। राजा के साले ने उसी समय यह ख़बर प्रतापादित्य को जा सुनाई कि जमाई बाबू रमाई मसख़रे को औरत की शकल में भीतर महल में ले गये थे। वहाँ उसने गाँव की स्त्रियों के साथ, रानी के साथ भी, परिहास किया है।

यह सुनते ही प्रतापादित्य का स्वरूप बड़ा ही भयङ्कर हो उठा। क्रोध से उनका हृदय जलने लगा। वे क्रोध में भरकर सिंह की तरह पलँग से उठ बैठे। बोले—लछमन सरदार (डोम) को बुलाओ। लछमन हाज़िर हुआ। उससे कहा—मैं आज रात में ही रामचन्द्र राय का कटा हुआ सिर देखना चाहता हूँ। उसने तुरन्त सलाम करके कहा—जो हुक्म। उनके साले ने तुरन्त उनके पैरों पर गिरकर कहा—महाराज, क्षमा कीजिए। एक बार विभा का स्मरण कीजिए। ऐसा काम न कीजिए। प्रतापादित्य ने फिर कड़ककर कहा—आज रात में ही मैं रामचन्द्र राय का सिर चाहता हूँ। उनके साले ने उनका पाँव पकड़कर कहा—महाराज, आज वे थके-माँदे अन्दर महल में सोये हैं। क्षमा कीजिए, महाराज, क्षमा कीजिए। तब प्रतापादित्य ने कुछ देर मौन धारण करके कहा—सुनो, लछमन, कल सबेरे जब रामचन्द्र राय अन्दर महल से बाहर निकलें, तब उन्हें बेख़ौफ़ क़त्ल कर डालना। तुम्हें आज्ञा दी गई। उनके साले ने जितनी आशा कर रक्खी थी उसकी अपेक्षा कहीं अधिक दण्ड हो गया। उन्होंने उसी समय चुपचाप आकर विभा के सोने के कमरे का द्वार खटखटाया।

उस समय कुछ दूर पर आधी रात की नौबत बज रही थी। रात के सन्नाटे में उस नौबत की आवाज़ चाँदनी के और दक्खिनी हवा के साथ मिलकर अर्धनिद्रित अवस्था में हृदय के अभ्यन्तर सुख-स्वप्न की सृष्टि कर रही थी। विभा के शयन-गृह के झरोखों की राह से चन्द्रमा की कोमल किरणें प्रवेश कर दुग्धफेननिभ शय्या को और भी उज्ज्वल कर रही थीं। रामचन्द्र राय सो रहे थे। विभा चुपचाप बैठी गाल पर हाथ दिये मन ही मन सोच रही थी। ज्योंही उसकी दृष्टि चाँदनी की ओर गई त्योंही उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। उसे खेद इस बात का था

कि जैसा कुछ उसने मन में सोच रक्खा था, वैसा न हुआ। इस कारण वह विकल होकर रो रही थी। वह बेचारी इतने दिनों से जिसके आने की बाट जोह रही थी, आज उसी के पास बैठकर उसके साथ बात करने को तरस रही है।

रामचन्द्र राय ने बड़े गर्व से पलङ्ग पर सोने के सिवा विभा के साथ कुछ बातचीत न की। प्रतापादित्य ने उनको अपमानित किया है, तो वे उस अपमान का बदला किस तरह लें? विभा को अग्राह्य करके वे यह दिखाना चाहते थे कि तुम यशोहर के प्रतापादित्य की बेटी हो, चन्द्रद्वीप के स्वामी राजा रामचन्द्र राय के आगे तुम्हारा क्या मोल है! यही सोचकर वे मुँह फेरकर सो रहे। अब तक उन्होंने करवट नहीं बदली। उनके मन में जो कुछ मान, अभिमान और क्रोध था, वह सब विभा के ऊपर। विभा बैठी हुई इन बातों को मन ही मन सोच रही थी। वह एक बार चाँदनी की ओर और एक बार स्वामी की ओर निहारती थी। ठहर-ठहरकर उसका हृदय काँप उठता था। हठात् एक बार रामचन्द्र राय की नींद टूट गई। उन्होंने देखा, विभा चुपचाप बैठी रो रही है। सोकर जाग उठने की शान्त अवस्था में जब उनके मन में मान-अपमान का कुछ स्मरण न था, गहरी नींद लेने के बाद चित्त का सात्त्विक भाव कुछ देर के लिए पलट गया था, रोष का भाव मन से दूर चला गया था, तब एकाएक विभा के अश्रुपूर्ण नेत्र और कुम्हलाये हुए कमल-सा कोमल करुणार्द्र मुखमण्डल देखकर उनके हृदय में एकाएक दया का सञ्चार हो आया। उन्होंने विभा का हाथ पकड़कर कहा—अयँ, तुम इस तरह रो रही हो? विभा का सारा शरीर कण्टकित हो गया। वह कुछ उत्तर न दे सकी। वह सङ्कोच से सिमटकर चुपचाप बिछौने पर लेट रही। तब रामचन्द्र राय ने बैठकर विभा के मस्तक को धीरे से उठाकर अपनी गोद में रक्खा और उसकी आँखों के आँसू पोंछकर

कुछ कहना चाहा। इसी समय किसी ने बाहर से किवाड़ों में धक्का दिया। रामचन्द्र राय ने चौंककर पूछा—कौन? बाहर से जवाब आया—जल्दी किवाड़ खोलो।

—·—

दसवाँ परिच्छेद

रामचन्द्र राय किवाड़ खोलकर बाहर आये। राजा के साले रमापति ने कहा—रायजी, तुम अभी यहाँ से भागो, ज़रा भी देर न करो।

आधी रात को एकाएक ऐसी भयानक बात सुनकर रामचन्द्र राय की मानों जान निकल गई। उनका मुँह सूख गया। उन्होंने लड़खड़ाती ज़बान से पूछा—क्यों?

"यह बतलाने का समय नहीं है। तुम अभी यहाँ से चल दो।"

विभा पलँग से उतरकर धीरे धीरे-बाहर आई। उसने धीमे स्वर में पूछा—मामा, क्या हुआ?

रमापति—वह बात तुम्हारे सुनने की नहीं है।

विभा का माथा ठनका। उसने एक बार वसन्तराय और एक बार उदयादित्य की बात सोची। फिर उसने धीरज धरकर पूछा—क्यों मामा, क्या हुआ?

रमापति ने विभा के प्रश्न का कुछ जवाब न देकर रामचन्द्र राय से कहा—व्यर्थ समय बीता जा रहा है। तुम इसी वक्त छिपकर भागने की तदबीर करो।

विभा के मन में सहसा एक भयङ्कर अशुभ की आशङ्का जाग उठी। मामा को वहाँ से जाने पर उद्यत देख विभा उनके आगे

जा रास्ता छेंककर खड़ी हुई और बोली—मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। क्या हुआ ? सच सच बतलाओ।

रमापति ने भयभीत दृष्टि से चारों ओर देखकर कहा—विभा, बहुत शोर मत करो, चुप रहो; मैं तुमसे सभी बातें कहे देता हूँ।

जब रमापति ने शुरू से अख़ीर तक सभी बातें कह सुनाईं, तब विभा ने ज़ोर से चीख़ मारकर रोना चाहा। रमापति ने झटपट उसका मुँह बन्द करके कहा—चुप, चुप, देख सर्वनाश न कर। विभा उछलते हुए कलेजे को हाथ से थामकर वहीं बैठ गई।

रामचन्द्र राय अत्यन्त अधीर होकर बोले—मैं अब क्या करूँ ? भागने का कोई रास्ता बता दीजिए। मैं तो कुछ जानता नहीं।

"आज पहरेदार हवेली के चारों ओर बड़ी सावधानी से पहरा दे रहे हैं। मैं जाता हूँ, यदि भागने का कोई रास्ता मिल गया तो मैं तुरन्त ख़बर दूँगा।" यह कहकर रमापति जाने लगे। विभा ने उन्हें रोककर कहा—मामाजी, तुम कहाँ जाते हो ? तुम हम लोगों के पास रहो। तुम चले जाओगे तो हम लोगों को किसका बल रहेगा ?

रमापति—विभा, तुम बावली तो नहीं हो गई ? मैं तुम्हारे पास रहकर तुम लोगों का कोई उपकार न कर सकूँगा। मैं एक बार चारों ओर की खोज-ख़बर लेकर अभी लौटकर आता हूँ।

विभा बड़ी फुर्ती से उठ खड़ी हुई। उसका सर्वाङ्ग भय से काँप रहा था। उसने रमापति से गिड़गिड़ाकर कहा—मामा, ज़रा देर के लिए ठहर जाओ। मैं एक बार भैया के पास हो आऊँ। यह कहकर विभा हाँफती हुई उदयादित्य के सोने के कमरे में गई।

तब चन्द्रमा पाण्डुवर्ण होकर अस्त होने पर था। चारों ओर धीरे-धीरे अन्धकार अपना प्रभाव फैलाता जा रहा था। सभी लोग निद्रा देवी की गोद में विश्राम ले रहे थे। कहीं भी शब्द सुनाई नहीं देता था। रामचन्द्र राय ने अपने शयनागार के द्वार

पर खड़े होकर देखा कि हवेली के आमने सामने दोनों ओर जितनी कोठरियाँ हैं, सब बन्द हैं। सभी बेखटके सो रहे हैं। चन्द्रास्त होने के समय की दीवारों की छाया आँगन में दिखाई दे रही है। उसके एक भाग में चाँदनी का थोड़ा सा अंश अब भी बच रहा है। क्रमशः वह भी छिपी जा रही है। देखते ही देखते अन्धकार ने सम्पूर्ण संसार को अपने अधिकार में कर लिया। अन्धकार पहले ज्योत्स्ना के भय से बाग़ के भीतर पेड़ों की आड़ में छिपा था। ज्यों-ज्यों ज्योत्स्ना कृश होती गई त्यों-त्यों वह पाँव फैलाने लगा। रामचन्द्र राय कल्पना करने लगे कि चारों ओर के इस भयानक अन्धकार में न मालूम मेरे लोहू की प्यासी किधर एक तीक्ष्ण छुरी चमचमा रही है। वे कभी दहनी, कभी बाँईं ओर, कभी सामने और कभी पीछे की ओर आँख फाड़-फाड़कर देखते थे, न मालूम किस घड़ी किधर से उन पर अस्त्र-प्रहार हो। फिर वे यह सोचकर काँप उठते थे कि कदाचित् किसी कोने में कोई कपड़े से सारा बदन ढाँपे चुपचाप बैठा हो। कौन जाने घर के भीतर ही कोई हो। हो सकता है, चारपाई के नीचे मुझे मारने को कोई छिपा बैठा हो। इस प्रकार की अनेक कल्पनाएँ उनके चित्त को चूर कर रही थीं। उनके शरीर से पसीना बह चला। एक बार उनके मन में यह आशङ्का हुई कि शायद रमापति ही कुछ कर बैठे। वे डरकर धीरे-धीरे अपनी जगह से ज़रा दूर हटकर खड़े हुए। हवा के झोंके से अकस्मात् घर का चिराग़ बुझ गया। रामचन्द्र राय के जी में हुआ, शायद किसी ने चिराग़ बुता दिया है। उन्होंने अपने मन में दृढ़ निश्चय किया कि कोई आदमी ज़रूर घर में है। वे डरकर रमापति के पास खिसक गये। उन्होंने कम्पित स्वर से पुकारा—मामा। मामा ने कहा—क्या है? रामचन्द्र राय ने मन में सोचा, इस समय यदि विभा यहाँ रहती तो अच्छा होता। मामा पर पूरा विश्वास नहीं।

विभा उदयादित्य के पास जाते ही रोकर ज़मीन पर बेसुध हो गिर पड़ी। उसके मुँह से कोई बात न निकली। सुरमा ने उसे बैठाकर होश में लाने की चेष्टा की और पूछा—ननद, क्या हुआ? विभा सुरमा से लिपट गई। पर वह कुछ कह न सकी। उदयादित्य ने स्नेहपूर्वक विभा के माथे पर हाथ रखकर पूछा—कहो विभा, क्या है? विभा ने उनके दोनों हाथ पकड़कर कहा—भैया, मेरे साथ चलो, मामा तुमसे सब हाल कहेंगे।

तीनों वहाँ से झट रवाना हो विभा के शयनगृह के द्वार पर पहुँचे। वहाँ रामचन्द्र अँधेरे में बैठे थे। रमापति उनके पास खड़े थे। उदयादित्य ने वहाँ पहुँचते ही पूछा—मामा, क्या है? रमापति ने सब बातें उनसे कह सुनाईं। उदयादित्य ने अपने विशाल नयनों को विस्फारित करके सुरमा की ओर देखकर कहा—मैं अभी पिताजी के पास जाता हूँ। मैं कदापि उन्हें ऐसा काम न करने दूँगा।

सुरमा—क्या वे आपकी बात मानेंगे? यदि आप उचित समझें तो एक बार दादाजी को उनके पास भेजिए। शायद उनके जाने से कुछ उपकार हो।

युवराज ने कहा—अच्छा, यही सही।

वसन्तराय उस वक्त गहरी नींद में सो रहे थे। जगाये जाने पर उदयादित्य को सामने देखकर उन्होंने सोचा, शायद सबेरा हो गया। तुरन्त भैरवी की तान लेना शुरू कर दिया।

उदयादित्य बोले—दादाजी, हम लोगों के ऊपर भारी सङ्कट है।

वसन्तराय का गान तुरन्त बन्द हो गया। वे डरते हुए उदयादित्य के पास आये। उन्होंने भयभीत होकर पूछा—अयँ, सो क्या भाई, क्या हुआ है? कैसा सङ्कट?

उदयादित्य ने सब कह सुनाया। वसन्तराय अपनी शय्या पर जा बैठे। उन्होंने उदयादित्य के मुँह की ओर देखकर और

सिर हिलाकर कहा—नहीं, नहीं, यह कभी हो सकता है ? यह कभी मुमकिन नहीं।

उदयादित्य—अब समय नहीं है। आप एक बार पिताजी के पास जायँ।

वसन्तराय उठ खड़े हुए और धीरे-धीरे जाने लगे। जाते-जाते वे कई बार बोले—भाई, यह क्या कभी होनेवाला है ? ऐसा भी कभी हुआ है ?

प्रतापादित्य अब तक अपने सोने के कमरे में नहीं गये थे। वे विचारालय में ही बैठे थे। एक बार उनके मन में हुआ था कि लछमन सरदार को बुलायें; किन्तु यह संकल्प तुरन्त मन से दूर हो गया। प्रतापादित्य कभी दो तरह की आज्ञा नहीं देते। जिस मुँह से हुक्म देना, उसी मुँह से हुक्म लौटा लेना, यह कैसी बात है ? हुक्म का लकर लड़कों का खेल करना उनका काम नहीं। किन्तु विभा ! विभा विधवा होगी। रामचन्द्र राय अगर अपनी इच्छा से आग में कूद पड़ता तब भी तो विभा विधवा होती। प्रतापादित्य की क्रोधाग्नि में रामचन्द्र राय जान-बूझकर कूद पड़ा है, उसका अनिवार्य फल—वैधव्य—विभा को भोगना ही होगा। इसमें प्रतापादित्य का क्या दोष ? बीच-बीच में जब सारी घटना स्पष्ट रूप से उनके मन में जाग उठती थी, तब वे एकदम अधीर हो उठते और सोचते थे कि रात कब बीतेगी। ठीक इसी समय वृद्ध वसन्तराय बड़े व्यग्र भाव से घर में प्रवेश करके प्रतापादित्य के दोनों हाथ पकड़कर बोले—प्रताप, यह मैंने क्या सुना है ?

प्रतापादित्य मारे क्रोध के जल उठे; बोले—क्या सुना है ?

वसन्तराय ने कहा—वह दो दिन का छोकड़ा अभी इन बातों का मर्म क्या जाने ? वह क्या तुम्हारे क्रोध का पात्र है ?

प्रतापादित्य—क्या कहा, छोकड़ा है ? वह बुड्ढों के कान काटता है। आग में हाथ डालने से हाथ जल जाता है, क्या यह

समझने की उम्र उसकी नहीं है ? कहीं का दरिद्र, उजड्ड, मूर्ख ब्राह्मण, जो मूर्खों के आगे दाँत दिखलाने का रोज़गार करके खाता है, उसे स्त्री के भेस में रानी के साथ परिहास कराने के लिए ले आया है। जो इतनी बड़ी बुद्धि का संग्रह करेगा उसका परिणाम क्या होगा ? वह बुद्धि अब उसके दिमाग़ में न रहने पायेगी। खेद यही है कि जब मस्तक में ऐसी बुद्धि संगृहीत होगी तब उसके धड़ पर मस्तक ही न रहेगा।

प्रतापादित्य जितना ही ज़ोर से बोलने लगे उतना ही उनका शरीर क्रोध से काँपने लगा। उनकी प्रतिज्ञा और भी दृढ़ होने लगी। उनकी क्रोधाग्नि और भी भभक उठी।

वसन्तराय ने कहा- वह अभी लड़का है, भला-बुरा कुछ नहीं समझता।

प्रतापादित्य आपे से बाहर हो गये। उन्होंने कहा—देखो, चाचा साहब, यशोहर के रायवंश का किसमें मान है और किसमें अपमान, यह ज्ञान यदि तुम्हें रहता तो क्या इस वृद्ध अवस्था में तुम मुग़ल बादशाह की अधीनता स्वीकार कर जहाँ-तहाँ बादशाह के कृपापात्र बनकर सिर उठाये फिरते ? इससे प्रतापादित्य का सिर एकबारगी झुक गया है। मुसलमानों के पैरों की धूल तुम भले ही सिर पर चढ़ाया करो। इच्छा थी कि तुम्हारा यह यवनपद-दलित मस्तक धूल में लोटता, किन्तु दैवदोष से उसमें बाधा हुई। इतना कहने पर भी तुम नहीं समझोगे। आज रायवंश की कितनी बड़ी बेइज़्ज़ती हुई है। उस पर भी तुम रायवंश के अपमान करनेवाले के लिए क्षमा की भिक्षा माँगने आये हो !

वसन्तराय—प्रताप, मैं समझता हूँ कि तुमने जब एक बार अस्त्र उठाया है, तब वह एक न एक के ऊपर पड़ेगा ही। मैं लक्ष्य से अलग हो गया इसी के बदले एक दूसरा आदमी उसका लक्ष्य हुआ है। अच्छा यदि तुम्हारे मन में दया न हो, तुम्हारा क्षुधित

क्रोध यदि एक आदमी को ग्रास करना ही चाहे, तब मुझे ही कवलित करे। लो, तुम्हारे चचा का यह सिर हाज़िर है; इसे उतारकर यदि तुम्हारा क्रोध शान्त हो तो अभी इसे उतार लो। ख़ञ्जर लाओ; इस माथे में अब एक भी काला बाल नहीं है। इस मुँह पर अब जवानी की ख़ूबसूरती भी नहीं है। उस बड़े दरबार के उपयुक्त मेरा सभी साज ठीक हो चुका है। किन्तु ख़ूब विचार करके देखो, विभा हम लोगों की दुधमुँही बच्ची है। जब उसकी आँखों से आँसू की धारा बह चलेगी तब—"

कहते-कहते वसन्तराय का कण्ठ रुद्ध हो गया। वे ज़ोर से साँस खींचकर रो उठे—प्रताप, मुझे अभी मार डालो, मेरे जीने में सुख नहीं। उस बालिका की आँखों में आँसू देखने के पहले ही मुझे मार डालो।

प्रतापादित्य इतनी देर तक चुप थे। जब वसन्तराय की बात पूरी हुई तब वे धीरे-धीरे उठकर चले गये। समझ गये कि बात ज़ाहिर हो गई। नीचे जाकर पहरेदारों को बुलाकर हुक्म दिया—राजभवन के पासवाली नहर अभी बड़े-बड़े साखुओं से बन्द कर दी जाय। उसी नहर में रामचन्द्र राय की नाव थी। उन्होंने पहरेदारों को सख़्त ताकीद कर दी कि आज की रात महल से कोई बाहर न जाने पावे।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

वसन्तराय जब अन्तःपुर में लौट आये तब उनको देखकर विभा रोने लगी। वसन्तराय आँसुओं को न रोक सके। उन्होंने उदयादित्य का हाथ पकड़कर कहा—बेटा, तुम कोई उपाय कर दो।

रामचन्द्र राय एकदम अधीर हो उठे। तब उदयादित्य ने अपनी तलवार हाथ में ली और कहा—आओ, मेरे साथ-साथ आओ। सभी उनके साथ-साथ चले। उदयादित्य ने कहा—विभा, तू यहीं रह, तू मत आ। विभा ने सिर हिलाया। रामचन्द्र राय ने कहा—नहीं, विभा साथ ही साथ आवे। उस निःशब्द रात में सभी पैरों की आहट बचा-बचाकर चलने लगे। रामचन्द्र राय के मन में होने लगा—जैसे भयानकता चारों ओर से उनको पकड़ने के लिए हाथ बढ़ा रही है। रामचन्द्र राय कभी सामने, कभी पीछे, कभी इधर-उधर भयभीत होकर देखने लगे। मामा के ऊपर रह-रहकर उन्हें सन्देह उत्पन्न होने लगा। उदयादित्य ने देखा, हवेली से बाहर जाने का द्वार बन्द है। विभा ने भय से काँपते हुए रुद्ध-कण्ठ से कहा—भैया, शायद सुरङ्ग की राह से बाहर जाने का दरवाज़ा खुला हो। वहीं चलो। सब के सब उसी तरफ़ चले। घोर अन्धकार में टटोल-टटोलकर सीढ़ी पर पाँव रखते हुए नीचे जाने लगे। रामचन्द्र राय ने मन में कहा—इन सीढ़ियों से नीचे जाने पर, मालूम होता है, फिर कोई ऊपर न आ सकेगा। जान पड़ता है, वासुकि नाग का बिल यही है और पाताल में प्रवेश करने की सीढ़ियाँ भी ये ही हैं। सीढ़ियों को पारकर द्वार के निकट जाकर देखा, दरवाज़ा बन्द है। फिर धीरे-धीरे उसी रास्ते से सब लौट आये। हवेली से बाहर होने के जितने दरवाज़े हैं सब बन्द हैं। सब लोग मिलकर हवेली के दरवाज़े-दरवाज़े घूमे। हर एक द्वार पर दो-तीन बार गये। सभी बाहर से बन्द थे।

जब विभा ने देखा कि बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है तब उसने आँसू पोंछ डाले और स्वामी को हाथ पकड़कर अपने शयनागार में ले गई। द्वार के निकट खड़े होकर उसने अकम्पित स्वर से कहा—देखूँ तो, इस घर से निकालकर तुम्हें कौन ले जा सकता है? तुम जहाँ जाओगे, मैं तुम्हारे साथ जाऊँगी; देखूँगी

मुझे कौन रोकता है! उदयादित्य ने द्वार के निकट खड़े होकर कहा—मैं जब तक जीता रहूँगा, कोई घर के भीतर पैर न रख सकेगा। सुरमा चुपचाप स्वामी की बग़ल में जाकर खड़ी हुई। वृद्ध वसन्तराय सबके आगे आकर खड़े हुए। मामा धीरे-धीरे चले गये। किन्तु रामचन्द्र राय को यह प्रबन्ध पसन्द न आया। वे सोच रहे थे कि प्रतापादित्य जिस प्रचण्ड स्वभाव के मनुष्य हैं वे क्या नहीं कर सकते। विभा और उदयादित्य बीच में पड़कर कुछ कर सकेंगे, ऐसा भरोसा नहीं होता। किसी तरह इस मकान के बाहर हो जाने ही पर प्राण बच सकते हैं।

कुछ देर के बाद सुरमा ने कोमल स्वर में उदयादित्य से कहा—यहाँ हम लोगों के खड़े रहने से कुछ उपकार होने की आशा नहीं; बल्कि इसका फल उलटा ही होना सम्भव है। महाराज के कर्तव्य में जितनी ही बाधा डाली जायगी, उतना ही उनका सङ्कल्प और भी दृढ़तर होगा। आज रात में ही किसी तरह हवेली से इनके भागने का उपाय कर दीजिए।

उदयादित्य कुछ देर तक चिन्तित भाव से सुरमा के मुँह की ओर देखकर बोले—अच्छा, मैं जाता हूँ। बल-प्रयोग करके देखूँ। शायद काम निकल जाय।

सुरमा ने दृढ़ भाव से सम्मति-सूचक सिर हिलाकर कहा—जाइए।

उदयादित्य ने अपने ऊपर का कपड़ा उतारकर वहीं रख दिया। सुरमा कुछ दूर तक उनके साथ-साथ गई। एकान्त स्थान में जाकर वह उदयादित्य के गले से लिपट गई। उदयादित्य सिर झुकाकर बड़े प्रेम से उसका मुँह चूमकर तुरन्त वहाँ से आगे बढ़े। अब सुरमा लौटकर अपने शयनागार में आई। उसकी आँखों से आँसू की धारा बह चली। वह हाथ जोड़कर भगवती से प्रार्थना करने लगी—हे देवि, यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूँ तो इस

बार महाराज के हाथ से मेरे स्वामी की रक्षा करो। मैंने जो आज उनको ऐसे सङ्कट के समय जाने दिया है, यह माँ केवल तुम्हारे ही भरोसे! यदि इस विपत्काल में तुम मेरे पति की रक्षा न करोगी तो फिर संसार में तुम्हारा कोई विश्वास न करेगा। सुरमा का गला भर आया। वह रोने लगी। उसने अँधेरे में बैठकर मन ही मन कितनी ही बार माँ, माँ कहकर पुकारा, पर उसके हृदय ने स्पष्ट कह दिया कि माँ ने उसकी पुकार नहीं सुनी। उसने जो मन ही मन उनके पैरों पर कुसुमाञ्जलि चढ़ाई उसको उन्होंने ग्रहण नहीं किया। उसे प्रतीत हुआ मानों उनके पैरों पर से वह कुसुमाञ्जलि नीचे गिर पड़ी। सुरमा ने करुण स्वर से रोकर कहा—क्यों माँ! मैंने क्या अपराध किया है? इस प्रश्न का भी कुछ उत्तर न मिला। उस अन्धकार में सुरमा को जान पड़ा, जैसे चारों ओर प्रलय की मूर्ति नाच रही हो। उसकी आँखों के सामने विपद् ही विपद् दिखाई दे रही है। वह मारे भय के अपने कमरे में अकेली नहीं बैठ सकी। वहाँ से उठकर विभा के शयनगृह में चली आई।

वसन्तराय ने अधीर स्वर में कहा—उदय अब तक लौटकर नहीं आया। न मालूम क्या होनी है?

सुरमा ने दीवार के सहारे खड़ी होकर कहा—विधाता को जो करना होगा, वही होगा।

रामचन्द्र राय उस वक्त मन ही मन अपने पुराने नौकर राममोहन का सर्वनाश कर रहे थे; क्योंकि उसी के कारण ये सब सङ्कट आ पड़े हैं। जिस-जिस प्रकार से उसका दण्ड होना सम्भव था, मन ही मन उसका विधान कर रहे थे; बीच-बीच में जब एकाध बार उन्हें होश हो आता था, तब यह सोचकर पछताते थे कि शायद अब सज़ा देने का अवसर हाथ न आवेगा।

उदयादित्य तलवार लिये सदर दरवाज़े पर जाकर ज़ोर से किवाड़ में पैरों की ठोकर मारकर बोले—कौन है?

बाहर से जवाब आया—जी, मैं हूँ, सीताराम।

युवराज ने कड़ककर कहा—जल्दी द्वार खोलो।

उसने तुरन्त दरवाज़ा खोल दिया। उदयादित्य जब वहाँ से आगे बढ़ने लगे तब उसने हाथ जोड़कर कहा—युवराज, माफ़ कीजिए, आज रात में हवेली से किसी को बाहर जाने का हुक्म नहीं है।

युवराज ने कहा—सीताराम, तो क्या तुम भी मेरे विरुद्ध अस्त्र धारण करोगे? अच्छा तो आओ। यह कहकर उन्होंने म्यान से तलवार खींच ली।

सीताराम ने हाथ जोड़कर कहा—नहीं, युवराज! मैं आपके विरुद्ध अस्त्र धारण नहीं कर सकता। आपने दो बार मेरे प्राण बचाये हैं। यह कहकर उसने उनके पैरों की धूल सिर में लगाई।

युवराज—तो तुम क्या चाहते हो? शीघ्र कहो, अब समय नहीं है।

सीताराम—मेरे जिस जीवन की रक्षा आपने दो बार की है, इस बार आप उसका विनाश न कीजिए। मेरा हथियार ज़ब्त कर लीजिए और मेरे हाथ-पाँव ख़ूब कसकर बाँध दीजिए। नहीं तो महाराज के सामने कल मेरी रक्षा का कोई उपाय नहीं।

युवराज ने उसका अस्त्र ले लिया और उसी के कपड़े से उसको कसकर बाँध दिया। वह उसी जगह पड़ा रहा। युवराज वहाँ से आगे बढ़े। कुछ आगे साधारण ऊँचाई की एक दीवार थी। उस दीवार में एकमात्र द्वार था। वह भी बन्द था। हवेली से बाहर होने का वही प्रधान मार्ग था। युवराज द्वार में धक्का न देकर एकदम फाँदकर दीवार पर चढ़ गये। उन्होंने देखा कि उस द्वार का रक्षक दीवार का सहारा लेकर मज़े में सो रहा है। वे बड़ी सावधानी से नीचे उतरे और उन्होंने बड़ी तेज़ी से उस पहरेदार के पास जाकर पहले उसका हथियार छीनकर दूर फेंक दिया और तब उस घबराये हुए पहरेदार को सिर से पैर तक ख़ूब कसकर

बाँध दिया। उसके पास कुञ्जी थी। कुञ्जी लेकर उन्होंने दरवाज़ा खोला। इतनी देर के बाद पहरेदार को होश हुआ। उसने विस्मित स्वर में कहा—युवराज, यह क्या करते हो?

युवराज ने कहा—भीतर का रास्ता खोलता हूँ।

पहरेदार ने कहा—मैं कल महाराज को क्या जवाब दूँगा?

उदयादित्य ने कहा—कह देना कि युवराज ने ज़बरदस्ती हमको पराजित करके दरवाज़ा खोल डाला। इससे तुम्हारी जान बच जायगी।

उदयादित्य हवेली से निकलकर पहले उस कमरे में गये जिसमें जामाता के साथी लोग थे। उस घर में केवल राममोहन और रमाई सोया था और लोग खा-पीकर नाव पर चले गये थे। युवराज ने धीरे-धीरे राममोहन की देह पर हाथ रखकर जगाया। वह चौंककर जाग उठा और अचम्भे में आकर बोला—युवराज साहब! क्या है? युवराज ने कहा—बाहर आओ। राममोहन बाहर आया। युवराज ने उससे सब हाल कहा।

तब राममोहन ने सिर पर चादर लपेटकर मज़बूती से लाठी पकड़ी और अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा—देखूँगा, लछमन सरदार कितना बड़ा आदमी है। युवराज, आप हमारे महाराज को एक बार सिर्फ़ मेरे पास पहुँचा दें, फिर मैं अकेला इस लाठी से सौ मनुष्यों को भगा सकता हूँ।

युवराज ने कहा—यह मैं मानता हूँ, किन्तु यशोहर राजधानी में सौ से कहीं ज़्यादा आदमी हैं। तुम ज़बरदस्ती कुछ न कर सकोगे। कोई दूसरा उपाय सोचो।

राममोहन ने कहा—अच्छा, महाराज को एक बार मेरे पास ले आइए। मेरे पास जब आकर वे खड़े होंगे तब मैं निश्चिन्त होकर उपाय सोच सकूँगा। तब उदयादित्य हवेली के अन्दर जाकर रामचन्द्र को बुला लाये। वे और उनके साथ सभी आये।

राममोहन को देखते ही रामचन्द्र राय क्रोध से प्रज्वलित होकर बोले—तुझको मैंने अभी मौकूफ़ कर दिया—तू दूर हो जा। तू पुराना आदमी है, तुझे इससे अधिक और क्या दण्ड दूँ। यदि मैं इस बार बच गया तो फिर तेरा मुँह न देखूँगा। यह कहते-कहते उनका गला रुक गया। असल में वे राममोहन को जी से चाहते थे।

राममोहन ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, मुझको मौकूफ़ करनेवाले आप कौन? मेरी यह नौकरी ईश्वर की दी हुई है। जिस दिन यमराज के यहाँ से बुलाहट होगी उसी दिन ईश्वर मेरी यह नौकरी छुड़ावेंगे। तुम मुझे रक्खो चाहे न रक्खो, लेकिन मैं तो तुम्हारा नौकर हूँ। यह कहकर वह रामचन्द्र के आगे आकर खड़ा हुआ।

उदयादित्य ने पूछा—राममोहन, क्या उपाय सोचा?

राममोहन—आपके श्रीचरणों के आशीर्वाद से यह लाठी ही उपाय है और कालिका माता के चरणों का भरोसा है।

उदयादित्य ने सिर हिलाकर कहा। यह उपाय ठीक नहीं। अच्छा, राममोहन! तुम्हारी नाव किस तरफ़ है?

राममोहन—राजभवन की दक्खिन ओरवाली नहर में।

उदयादित्य—चलो, एक बार छत के ऊपर चलें।

राममोहन की समझ में एक उपाय आया। उसने कहा—जी हाँ, बहुत ठीक, वहीं चलिए।

सब लोग कोठे की छत पर चढ़े। छत से ४०, ५० हाथ नीचे नहर है। उसी नहर में रामचन्द्र की चौंसठ डाँड़ोंवाली नाव लगी हुई है। राममोहन ने कहा—मैं रामचन्द्र राय को अपनी पीठ पर बाँधकर छत पर से नहर में कूद पड़ूँगा।

वसन्तराय भयभीत होकर झट राममोहन को पकड़कर बोले—नहीं, नहीं। यह कैसे होगा? राममोहन, तुम ऐसा असम्भव काम न करो।

विभा डर से चौंककर बोली—नहीं, मोहन, यह क्या कह रहे हो। रामचन्द्र ने कहा—नहीं, राममोहन यह ठीक न होगा।

तब उदयादित्य कोठे से नीचे उतरकर ख़ूब मोटी और बड़ी रस्सी कितनी ही चादरें इकट्ठी कर लाये। राममोहन ने उन चादरों को ऐंठकर और बीच-बीच में गाँठ देकर एक बड़ी सी रस्सी बनाई। जिस तरफ़ नाव थी उस तरफ़वाली छत के ऊपर के एक छोटे से पाये के साथ उसने उस रस्सी का एक छोर ख़ूब मज़बूती से बाँधा। रस्सी नीचे लटकाई गई तो वह नाव के ऊपर तक जा पहुँची। राममोहन ने रामचन्द्र राय से कहा—महाराज, आप मेरी पीठ को ख़ूब ज़ोर से लिपटकर पकड़ें। मैं रस्सी के सहारे नीचे उतर जाऊँगा। रामचन्द्र राय ने निरुपाय होकर राममोहन की इस बात को स्वीकार कर लिया। वहाँ जितने लोग थे सब के पैर छूकर राममोहन ने प्रणाम किया। आख़िर 'जय माँ काली' कहकर उसने रामचन्द्र को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। रामचन्द्र राय ने आँखें मूँदकर ख़ूब ज़ोर से राममोहन की पीठ पकड़ी। चलते समय राममोहन ने विभा की ओर देखकर कहा—माँ, मैं अब जाता हूँ, तुम्हारी इस सन्तान के रहते क्या डर है?

राममोहन ने दोनों हाथों से ख़ूब कसकर रस्सी पकड़ी। विभा पाये के सहारे छाती को पत्थर करके खड़ी रही। वृद्ध वसन्तराय का शरीर भय से काँपने लगा। वे आँखें मूँदकर दुर्गादेवी का स्मरण करने लगे। राममोहन रस्सा के सहारे जब नीचे तक पहुँच गया तब उसने दाँतों में रस्सी ख़ूब कसकर पकड़ी और रामचन्द्र को पीठ पर से उतार दोनों हाथों से उनकी बाँहें पकड़कर बड़ी सावधानी से नाव पर खड़ा कर दिया, फिर वह आप भी नाव पर कूद पड़ा। नाव पर पाँव रखते ही रामचन्द्र राय बेहोश हो गये। उधर विभा भी एक लम्बी साँस लेकर मूर्च्छित हो गिर पड़ी। वसन्तराय ने आँखें खोल-

कर कहा—अरे यह क्या हुआ ? उदयादित्य विभा को उसी बेहोशी की हालत में उठाकर नीचे महल में ले गये। सुरमा ने उदयादित्य का हाथ पकड़कर कहा—आपने अपने लिए कौन सा उपाय सोचा है ?

उदयादित्य—तुम मेरे लिए कुछ चिन्ता न करो।

इधर रामचन्द्र राय को नाव पर लेकर मल्लाह बड़े वेग से नाव को ले चले। कुछ दूर जाकर नाव एकाएक अटक गई। बड़े बड़े साखू के शहतीरों से नहर का मुँह बन्द था। इसी समय पहरेदारों ने दूर से देखा—नौका भागी जा रही है। उन्होंने पत्थर चलाना आरम्भ किया, पर एक भी पत्थर वहाँ तक न पहुँचा। राममोहन और माँझी शहतीरों को हटाकर किसी तरह नाव को खींच-खाँचकर आगे बढ़ा ले गये। जब रामचन्द्र की नाव भैरव नद में पहुँची तब फ़र्नान्डिज़ ने एक तोप की आवाज़ की। रात्रि के अन्त में प्रतापादित्य को कुछ नींद आई थी जो उस तोप की आवाज़ से टूट गई।

बारहवाँ परिच्छेद

प्रतापादित्य ने खूब ज़ोर से पुकारा—दरबान! जब कोई नहीं बोला तब उन्होंने झट बिछौने से उठकर बड़ी तेज़ी से बाहर आकर दीवान को पुकारा। एक नौकर दौड़कर मन्त्री को बुला लाया।

प्रतापादित्य—दीवान, पहरेदार कहाँ गये ?

मन्त्री—बाहर के दरवाज़े वाले पहरेदार भाग गये।

मन्त्री ने देखा, भारी बला सिर पर आना चाहती है। इसी से उन्होंने प्रतापादित्य की बात का स्पष्ट और यथार्थ उत्तर दे दिया।

कारण यह कि जितना ही घुमा-फिराकर और देर करके उनकी बात का जवाब दिया जाता, उतना ही वे क्रोध से आगबबूला हो उठते।

प्रतापादित्य ने कहा—भीतर के पहरेदार ?

मन्त्री ने कहा—मैंने अभी आते समय देखा है, वे बँधे पड़े हैं।

मन्त्री रात का हाल कुछ भी नहीं जानता। क्या हुआ है, इसका भी वह कुछ अनुमान नहीं कर सकता। उसने इतना ही समझा कि कोई भयङ्कर दुर्घटना हुई है। उस वक्त इस विषय में महाराज से कुछ पूछना भी असम्भव था।

प्रतापादित्य ने बड़े क्रोध से पूछा—रामचन्द्र राय कहाँ हैं ? उदयादित्य कहाँ हैं ? और वसन्तराय कहाँ हैं ?

मन्त्री ने धीरे-धीरे कहा—मालूम होता है, वे लोग हवेली ही में हैं।

प्रतापादित्य ने झल्लाकर कहा—मालूम तो मुझे भी होता है। तब तुमसे मैंने पूछा किस लिए ? अनुमान की बात हमेशा सच नहीं होती।

मन्त्री बिना कुछ उत्तर दिये धीरे-धीरे बाहर गये। रमापति से रात की सारी घटना ज्ञात हुई। जब सुना कि रामचन्द्र राय भाग गये हैं तब उनके मन में चिन्ता हुई। मन्त्री ने बाहर जाकर देखा, रमाई बैठा है। एक नौकर से कहा—इसको ले चलो।

रमाई को देखते ही प्रतापादित्य एकदम जल उठे। उस पर भी जब उसने प्रतापादित्य को सन्तुष्ट करने के लिए दाँत दिखाकर और हाथ-मुँह चमकाकर कोई हास्यरस की बात कहना आरम्भ किया तब प्रतापादित्य को बर्दाश्त न हुआ। वे झट आसन से उठे और दोनों हाथ हिलाकर बड़ी घृणा से बोले—हटाओ, हटाओ, इसे अभी सामने से दूर करो।

रमाई तुरन्त वहाँ से निकाल दिया गया।

मन्त्री ने कहा—महाराज, राज-जामाता—

प्रतापादित्य ने घृणा के साथ सिर हिलाकर कहा—रामचन्द्र राय—

मन्त्री—जी हाँ, वे कल रात में ही राज-भवन छोड़कर चले गये।

प्रतापादित्य ने खड़े होकर कहा—राजभवन छोड़कर चला गया। पहरेदार कहाँ गये?

मन्त्री—बाहर के पहरेदार भाग गये।

प्रतापादित्य ने क्रोध से मुट्ठी बाँधकर कहा—भाग गये हैं? भागकर कहाँ जायँगे? जो जहाँ हो वहाँ से ढूँढ़कर लाना होगा। अभी भीतर के पहरेदारों को बुलाओ। मन्त्री फिर वहाँ से बाहर चले गये।

जब अच्छी तरह आसमान साफ़ हुआ, चारों ओर सूर्य की किरणें फैलीं तब वसन्तराय ने लम्बी साँस लेकर शान्ति पाई। तब उनके मन से एक अनिर्दिष्ट भय का भाव दूर हुआ। तब स्थिर-चित्त से उन्होंने सारी घटना को एक बार सोचकर देखा। वे विभा के घर से बाहर निकले। हवेली के सदर फाटक पर, जहाँ सीताराम बँधा पड़ा था, गये। उससे कहा—देखो, सीताराम, तुमसे जब प्रताप पूछें कि किसने तुम्हें बाँधा है, तब तुम मेरा नाम बतलाना। प्रताप जानते हैं, किसी समय वसन्तराय बलिष्ठ था, वे तुम्हारी बात का विश्वास करेंगे।

सीताराम प्रतापादित्य के पास जाकर क्या जवाब देगा, अभी तक वह इसी बात को सोच रहा था। इस मामले में वह किसी तरह उदयादित्य का नाम लेना नहीं चाहता था। वसन्तराय की बात पर वह तुरन्त राज़ी हो गया। तब उन्होंने दूसरे पहरेदार के पास जाकर कहा—भागवत, प्रताप के पूछने पर तुम कहना कि वसन्तराय ने तुम्हें बाँधा है।

भागवत ने कहा—हरे-हरे! ऐसी बात मुझसे न कहिए। इसमें मुझको अधर्म होगा।

वसन्तराय ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—भागवत, मेरी बात सुनो, इसमें कोई पाप नहीं। भले आदमी के प्राण बचाने के हेतु झूठ बोलने में यदि पाप होता तो ऐसा करने के लिए मैं तुमसे अनुरोध क्यों करता ?

उसने कहा—नहीं महाराज, मालिक के सामने झूठ बात कैसे बोलूँगा ?

वसन्तराय बेतरह घबरा उठे; उन्होंने व्याकुल होकर कहा—भागवत मेरी बात सुनो, मैं तुमसे समझाकर कहता हूँ। इस तरह की झूठ बात बोलने में कोई पाप नहीं होता। देखो बाबू, अगर तुम मेरी बात रक्खोगे तो मैं तुम्हें खुश कर दूँगा। अच्छा, अभी जो मेरे पास है सो लो।

भागवत ने तुरन्त हाथ बढ़ा दिया और उन रुपयों को उसी समय टेंट में रख लिया। वसन्तराय कुछ निश्चिन्त होकर लौट गये।

प्रतापादित्य के यहाँ उन दोनों पहरेदारों की पुकार हुई। मन्त्री उन दोनों को साथ ले गये। प्रतापादित्य अभी अपने उफनाये हुए क्रोध को दबाकर गम्भीर भाव से बैठे थे। उन्होंने प्रत्येक शब्द धीरे-धीरे स्पष्ट रूप से उच्चारण करके कहा—कल रात में हवेली का फाटक क्योंकर खोला गया ?

सीताराम का जी काँप उठा। उसने हाथ जोड़कर कहा—दुहाई महाराज बहादुर की, मेरा कोई क़सूर नहीं।

महाराज ने भौंहें सिकोड़कर कहा—क़सूर की बात तुमसे कौन पूछता है ?

सीताराम ने झट कहा—जी नहीं, हुजूर अर्ज़ करता हूँ, युवराज—युवराज मुझको ज़बरदस्ती बाँधकर हवेली से बाहर गये थे।

युवराज का नाम उसके मुँह से एकाएक बाहर निकल ही गया। उसने सब बातों की अपेक्षा इसी को विशेष रीति से सोच रक्खा था कि वह नाम कहीं उसके मुँह से न निकले, किन्तु घबराहट के मारे

सबके पहले उसके मुँह से यही नाम निकल पड़ा। एक बार जब मुँह से निकल पड़ा तब फिर उसके छिपाने का उपाय ही क्या था।

वसन्तराय ने सुना, पहरेदारों की पुकार हुई है। तब वे हड़-बड़ाकर प्रतापादित्य के पास जा पहुँचे। सीताराम का बयान हो रहा था। वह कह रहा था—युवराज को मैंने मना किया; पर उन्होंने नहीं माना।

वसन्तराय फ़ौरन बोल उठे—हाँ, हाँ, सीताराम क्या कहा? अधर्म न कर, सीताराम, समझकर बात बोल। भगवान् तेरे ऊपर प्रसन्न होंगे। उदयादित्य का इसमें कोई दोष नहीं है।

सीताराम ने बड़ी जल्दी में कह डाला—जी नहीं; युवराज का कोई क़सूर नहीं।

प्रतापादित्य ने डपटकर कहा—तब तेरा ही क़सूर है।

सीताराम—जी नहीं।

"तब किसका क़सूर है?"

"जी—युवराज—"।

भागवत से जब पूछा गया तब उसने सब बातें ठीक-ठीक बतला दीं। केवल अपने बेख़बर होकर सोने की बात उसने छिपा ली। वृद्ध वसन्तराय ने चारों ओर अक़्ल दौड़ाई, किन्तु कोई उपाय नहीं सूझा। आख़िर आँखें मूँदकर उन्होंने मन ही मन दुर्गा का स्मरण किया। दोनों पहरेदार उसी समय अपने काम से मुअत्तल किये गये। वे लोग यदि किसी के द्वारा बलपूर्वक बाँधे जा सकते हैं तो वे पहरेदारी करने क्या सोचकर आये? इस अपराध में उनको कोड़ों से पीटे जाने का हुक्म हुआ।

तब प्रतापादित्य वसन्तराय के मुँह की ओर देखकर वज्र की तरह गम्भीर स्वर में बोले—उदयादित्य का यह अपराध क्षन्तव्य नहीं है। वे ऐसा भाव प्रकट कर बोले मानों उदयादित्य का वह अपराध वसन्तराय का ही है, मानों वे उदयादित्य को बीच में

रखकर उन्हीं को फटकार बता रहे हैं। वसन्तराय के अपराध के आगे वे उदयादित्य के प्राणों को तुच्छ समझते हैं।

वसन्तराय ने कहा—प्रताप, उदय का इसमें कोई दोष नहीं है।

प्रतापादित्य ने क्रोध से जलकर कहा—उदय का दोष नहीं है? तुम्हारा यह भाषण ही उसे अधिक दोषी बनाकर दण्ड दिला रहा है। तुम्हें क्या पड़ी है जो बीच में पञ्चायत करने आये हो? उदय दोषी है या नहीं, इसकी व्यवस्था करनेवाले तुम कौन?

वसन्तराय ने देखा, उन्हीं के कारण उदयादित्य को सज़ा हो रही है। वे मन ही मन सोच करने लगे।

कुछ देर बाद प्रतापादित्य कुछ शान्त होकर बोले—अगर हम जानते कि उदयादित्य में कुछ मानसिक बल है, उसमें कुछ समझ है, और जो करता है वह अपने ही विचार से करता है, यदि हम यह न जानते होते कि उस निर्बोध को जो चाहे आँखों के इशारे पर नचा सकता है; और यदि वह ऐसा निपट मूर्ख न होता तो आज उसके प्राणों का बचना कठिन था। हम इस पतङ्ग को जहाँ उड़ते देखते, वहाँ यही सोचते कि कौन इसे उड़ा रहा है। इसी कारण उसे सज़ा देने को भी जी नहीं चाहता। वह अबोध बालक की भाँति दण्ड देने योग्य भी नहीं। यही समझकर हम उसकी उपेक्षा करते हैं, किन्तु इस बार तुमसे समझाकर कह देते हैं कि यदि फिर कभी तुम यशोहर आकर उदयादित्य से मिलोगे तो उसके प्राणों का बचना कठिन हो जायगा।

वसन्तराय बड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे। आख़िर उन्होंने धीरे-धीरे उठकर कहा—अच्छा प्रताप, आज साँझ को मैं यहाँ से चला जाऊँगा। और कुछ न कहकर वे वहाँ से चल दिये और एक ठण्डी साँस ली।

तेरहवाँ परिच्छेद

उदयादित्य ने सुना कि नौकरी छूट जाने से सीताराम बड़ी दुर्दशा में पड़ गया है। एक तो उसके पास रुपया-पैसा नहीं, दूसरे उसके पास अनेक गलग्रह लोग जुटे हुए हैं। अतः उन्होंने सीताराम की दरिद्रता का हाल सुनकर उसको और भागवत को कुछ मासिक नियत कर दिया।

युवराज उन दोनों पदच्युत पहरेदारों को अपने पास से मासिक वेतन दे रहे हैं, यह बात प्रतापादित्य के कानों तक पहुँची। उन्होंने उदयादित्य को बुलाकर कहा—मैंने जो सीताराम और भागवत को नौकरी से अलग कर दिया है, सो क्या ख़ज़ाने में उनको वेतन देने योग्य द्रव्य न रहने के कारण? तब तुमने अपने पास से उनका महीना क्यों मुक़र्रर कर दिया है?

उदयादित्य ने धीरे-धीरे कहा—सच्चा अपराधी मैं हूँ। आपने उन दोनों को दण्ड देकर असल में मुझको दण्डित किया है। मैं अपने इस विचार के अनुसार महीने-महीने उनके निकट जुर्माने का रुपया दिया करता हूँ।

इसके पहले प्रतापादित्य ने इस तरह मनोयोग देकर उदयादित्य की बात कभी नहीं सुनी थी। उदयादित्य का धीर, गम्भीर और विनीत स्वर तथा उनकी नपी-तुली बातें सुनकर प्रतापादित्य को बहुत ही बुरा लगा। उदयादित्य की बात का कोई जवाब न देकर प्रतापादित्य ने कहा—उदय, मैं आज्ञा देता हूँ, आइन्दा से उनके सहायतार्थ द्रव्य न दिया जाय।

उदयादित्य ने कहा—मैंने ऐसा क्या अपराध किया है जिससे मुझे इतना बड़ा दण्ड दिया जा रहा है? मैं कैसे देख सकता हूँ कि मेरे कारण आठ-नौ आदमी भूखों मर रहे हैं; निराश्रय होकर गली-गली मारे फिरते हैं और मेरी थाली में अन्न का अभाव नहीं है।

मेरे पास जो कुछ है सब आपकी ही कृपा से। आप मेरी थाली में परिमाण से अधिक अन्न दे रहे हैं, किन्तु आप यदि मेरे भोजन के समय मेरे सामने आठ-नौ निरुपाय क्षुधार्त व्यक्तियों को बैठा रक्खें और उनके मुँह में अन्न देने का निषेध करें तो वह आगे का अन्न मेरे लिए विष होगा या नहीं ?

आवेग में आये हुए उदयादित्य को प्रतापादित्य ने बोलने के समय कुछ बाधा नहीं दी। जब वे सब बातें कह चुके तब प्रतापादित्य ने धीरे-धीरे कहा—तुमको जो कहना था, सो मैं सुन चुका। अब मैं जो कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। भागवत और सीताराम का मासिक मैंने बन्द कर दिया है। अगर कोई उनको मासिक मुक़र्रर कर दे तो वह मेरी इच्छा के विरुद्ध आचरण करनेवालों में गिना जायगा।

उदयादित्य ने सुरमा के पास जाकर सब वृत्तान्त कहा। सुरमा बोली—हाय! हाय! उस दिन, दिन भर उन लोगों ने कुछ नहीं खाया। दिन भर भूखे ही रह गये। शाम के समय सीताराम की माँ सीताराम की छोटी लड़की को लेकर मेरे पास आई और रोने लगी। मैंने सन्ध्या समय जब कुछ दिया तब उसने अपने बाल-बच्चों के साथ मिलकर खाया। सीताराम की लड़की दुधमुँही बच्ची है। वह दिन भर की भूखी थी। उसके मुँह को और क्या देखा जाता था! इन लोगों को थोड़ा बहुत कुछ न देने से ये लोग और कहाँ जायँगे ? इनकी क्या दशा होगी ?

उदयादित्य ने कहा—विशेषकर राजदरबार से जब वे लोग निकाल गये हैं, तब पिता के डर से कोई उन लोगों को आश्रय देने या किसी तरह की सहायता करने का साहस नहीं कर सकता। इस वक्त अगर हम लोग भी मुँह छिपा लें तो इस संसार में कोई उनकी ख़बर न लेगा। मदद मैं करूँगा ही सुरमा, उसके लिए तुम फ़िक्र न करो, किन्तु पिता

को व्यर्थ अप्रसन्न करना भी ठीक नहीं। ऐसा प्रबन्ध करना होगा जिसमें यह काम छिपे तौर से हो।

सुरमा ने उदयादित्य का हाथ पकड़कर कहा—आपको कुछ न करना होगा। मैं सब प्रबन्ध कर दूँगी। इसका भार मेरे ऊपर रहने दो। सुरमा अपने द्वारा उदयादित्य को ढँक रखना चाहती थी।

चौदहवाँ परिच्छेद

जब गुप्त रीति से वृत्ति भेजने की बात भी प्रतापादित्य ने सुन ली तब उन्होंने और कुछ न कहकर अन्दर हवेली में संवाद भेज दिया कि सुरमा को अपने बाप के घर जाना होगा। उदयादित्य ने अपनी छाती वज्रसदृश कठोर कर ली। विभा ने रोकर और सुरमा के गले से लिपटकर कहा—तुम अगर चली जाओगी तो मैं इस श्मशान-भूमि में अकेली कैसे रहूँगी? सुरमा ने विभा की ठोड़ी पकड़कर और उसका मुँह चूमकर कहा—विभा, मैं क्यों जाऊँगी, मेरे सर्वस्व यही हैं। सुरमा ने जब प्रतापादित्य की आज्ञा सुनी तब उसने कहा—मैं बाप के घर जाने का कोई कारण नहीं देखती। मुझे ले जाने के लिए वहाँ से कोई आया भी नहीं है। मेरे स्वामी भी इस विषय में राज़ी नहीं। अतएव बिना प्रयोजन एकाएक नैहर जाने की क्या आवश्यकता है?

यह सुनकर प्रतापादित्य क्रोध से जल उठे। किन्तु उन्होंने सोच करके देखा, इसका कोई उपाय नहीं है। सुरमा को ज़बरदस्ती घर से कोई बाहर कर ही नहीं सकता। तब उन्होंने रानी को बुलाकर कहा—सुरमा को उसके बाप के घर भेज दो। रानी ने कहा—तब फिर उदय की क्या दशा होगी? प्रतापादित्य ने

रुष्ट होकर कहा—उदय तो अब लड़का नहीं है! मैं राजकाज के ख़याल से सुरमा को राजभवन से कुछ दिन के लिए अलग कर देना चाहता हूँ। यही मेरा अभिप्राय है।

रानी ने उदयादित्य को बुलाकर कहा--बेटा उदय, सुरमा को नैहर भेज दो। उदयादित्य ने कहा--क्यों माँ, सुरमा ने क्या अपराध किया है?

रानी ने कहा--बेटा, हमें क्या मालूम? हम नहीं समझतीं कि बहू को बाप के घर भेजने से महाराज को राजकाज में क्या सुभीता होगा। यह वही जानें।

उदयादित्य--माँ, मुझको कष्ट देकर मुझे दुखी बनाकर राजकाज में क्या उन्नति होगी? जहाँ तक कष्ट सहने का था सो सब सहा ही है। मेरे लिए विधाता ने सुख सिरजा ही नहीं। सुरमा को भी तो सुख नहीं है। दोनों समय उसकी दुर्दशा होती है। कटु वाक्यों से उसका सत्कार किया जाता है, तो भी वह किसी से कुछ नहीं कहती। चुपचाप सब सहे जाती है। आख़िर क्या इतने बड़े राजभवन में अब उसके रहने के लिए थोड़ी सी जगह भी दुर्लभ होगी? क्या तुम लोगों के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं? क्या वह भिखारिन है कि जब तुम लोग चाहोगी रक्खोगी और जब जी में आवेगा निकाल बाहर कर दोगी? जब उसके लिए जगह नहीं तब मेरे लिए भी राजभवन में जगह नहीं। मुझे भी बिदा कर दो।

रानी ने रोना शुरू कर दिया। कुछ देर के बाद बोली—क्या जाने महाराज कब क्या करते हैं। उनका मतलब हमारी समझ में नहीं आता। पर तो भी हम इतना ज़रूर कहेंगी कि हमारी बहू भी कुछ अच्छी औरतों में नहीं है। वह जब से यहाँ आई है तब से किसी को सुख-चैन नहीं। हमारी देह जलकर कोयला हो गई। तुमसे हम कुछ नहीं कहतीं। कुछ दिन के लिए बाप के घर जायगी

तो क्या हर्ज है, फिर देखा जायगा। उसके जाने पर देखोगे थोड़े ही दिनों में घर की शोभा पलट जायगी।

उदयादित्य ने इस बात का कुछ जवाब न दिया। कुछ देर चुपचाप बैठे रहे। फिर वे वहाँ से उठकर चले गये।

रानी आँसू-भरी आँखों से प्रतापादित्य के पास जाकर बोली—महाराज, क्षमा कीजिए; सुरमा को भेजने से उदय न बचेगा। मेरे बच्चे का कोई क़सूर नहीं। सुरमा डायन है, उसने जादू करके उसे अपने वश में कर लिया है। यह कहकर रानी रोने लगी।

प्रतापादित्य बड़े क्रुद्ध होकर बोले—सुरमा न जायगी तो उदयादित्य को मैं क़ैदख़ाने में रक्खूँगा।

महाराज के पास से लौटकर रानी सुरमा के पास गई और बोली—तू डायन है, तूने जादू करके मेरे उदय की मति-गति हरण कर ली है। अपना जन्तर-मन्तर अपने पास रहने दे। मेरे बेटे की जान बख़्श दे। यहाँ आते ही तूने उसे बहकाकर ख़राब कर दिया। तेरी ही बातों में पड़कर मेरा बच्चा इतना दुःख भोग रहा है। क्या अब उसके हाथों में बिना हथकड़ी डलवाये तू दम न लेगी?

सुरमा चौंककर बोली—अयँ, मेरे कारण उनके हाथों में हथकड़ी पड़ेगी? माँ, मुझे बिदा कर दो। मैं अभी जाती हूँ।

सुरमा ने तुरन्त विभा के पास जाकर सब हाल उससे कह सुनाया। विभा का दिल धड़कने लगा। उसके मुँह से एक भी बात न निकली। सुरमा विभा के गले से लिपटकर बोली—"प्यारी विभा, मैं अब जाती हूँ। यहाँ अब मुझे फिर कौन बुलावेगा?" विभा सुरमा का हाथ पकड़कर रोने लगी। सुरमा वहीं बैठ गई। भविष्य का सोच उसके हृदय को मसोसने लगा। उसकी आँखों के सामने चारों ओर अँधियारा छा गया। उसके सिर में चक्कर आने लगा, छाती फटने लगी, मुँह सूख गया और मारे उत्ताप के उसकी आँखों के आँसू भी सूख गये। उदयादित्य को अपने पास

आते देख सुरमा ने लपककर उनके दोनों पैर पकड़ लिये और अपनी छाती से दबाकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। उदयादित्य का हृदय व्याकुल हो उठा। वे सुरमा का मुँह ऊपर की ओर उठाकर प्रेम से भरे हुए स्वर में पूछने लगे—सुरमा, क्या हुआ? तुम्हें हमारी क़सम है, सच-सच कहो। सुरमा कुछ कहना चाहती थी पर उसके मुँह से बात नहीं निकलती थी। वह उदयादित्य के मुँह की तरफ़ ताकती और रो उठती। आख़िर कुछ देर धीरज बाँधकर वह बड़ी कठिनता से बोली—मैं अब यह मुँह देखने न पाऊँगी। साँझ होगी, आप खिड़की के पास आकर बैठेंगे, पर मैं आपके पास हाज़िर न हो सकूँगी। घर में चिराग़ जलेगा, आप इस घर के द्वार पर आकर खड़े होंगे, लेकिन मैं उमँगती और मुसकाती हुई आपको हाथ पकड़कर घर के भीतर न ले जा सकूँगी। आप जब यहाँ रहेंगे तब मैं न मालूम कहाँ रहूँगी।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

आरम्भ में ही रुक्मिणी का ज़िक्र आया है। मङ्गला वही रुक्मिणी है। वह रायगढ़ छोड़कर और अपना नाम बदलकर यशोहर में ही एक ओर ठहरी हुई है। जब से वह यशोहर में आई है तब से भाँति-भाँति के व्रत करने लगी है। जिससे वह मिलती है उसके मन का भाव आश्चर्य्यजनक रूप से समझ जाती है। उसके मन में सबसे प्रबल वासना यह है कि जब युवराज सिंहासन पर बैठें तब मैं उनके हृदय को हस्तगत कर उनके हृदय-राज्य और यशोहर-राज्य का एक साथ शासन करूँ। उसकी यह आशा दिन-दिन बढ़ती ही जाती है। इसी के लिए वह अनेक प्रकार का अनुष्ठान

कर रही है। जब वह सोती है तब भी उसके हृदय में यह आशा जागती रहती है। उसने बहुत दिनों से लगातार चेष्टा करके राज-भवन के सभी दास-दासियों के साथ मेल-मिलाप कर लिया है। राजभवन की छोटी से भी छोटी ख़बर उसके कानों तक पहुँच जाती है। सुरमा का मुँह कब मलिन हुआ, कब वह हँसी—यह भी उसे ज़ाहिर हो जाता है। प्रतापादित्य की कोई बात उससे छिपी नहीं है। वह बराबर अपने मन में यही सोचती रहती है कि कब मेरे कण्टक दूर होंगे और कब मैं अपना मनोरथ पूरा करूँगी।

रुक्मिणी ने जब सुना कि सुरमा के ऊपर राजा और रानी का क्रोध दिन दिन बढ़ रहा है और वे सुरमा को राजभवन से बिदा कर देना चाहते हैं तब उसके आनन्द की सीमा न रही।

रानी ने जब सुना कि मङ्गला नाम की एक विधवा स्त्री तन्त्र-मन्त्र और नाना प्रकार की जड़ी-बूटी जानती है तब उन्होंने सोचा, सुरमा को यहाँ से बिदा कर देने के पहले उदयादित्य का मन उसके पास से लौटा लेना अच्छा है। इसलिए उन्होंने मातङ्गिनी नाम की दासी को मङ्गला के पास जड़ी लाने के लिए भेजा।

मङ्गला नाना प्रकार की जड़ी-बूटी लेकर और मन्त्र पढ़कर दवा तैयार करने लगी। उस निःशब्द रात में, नगर के उस निर्जन प्रान्त में, एक बन्द घर में दवाई कूटने का शब्द होने लगा। उस रात में वही शब्द उसका एकमात्र सङ्गी था। वही शब्द मानों उसके नर्तनशील उत्साह के नृत्य में ताल देने लगा। उस ताल पर उसका उत्साह और भी तीव्र गति से नाचने लगा। उसकी आँखों से नींद न मालूम कहाँ चली गई।

दवा तैयार करने में पाँच रोज़ लगे। दवा क्या थी, एक प्रकार का विष था। इस काम में इतने दिन लगने की ज़रूरत न थी, किन्तु सुरमा के मरते समय जिसमें युवराज के मन में दया

उत्पन्न न हो, इसलिए उसको मन्त्र पढ़ने और टोना करने में कुछ अधिक समय लगा।

दिन का तीसरा पहर है। कल सबेरे सुरमा के जाने का दिन है। उसके घर की जो चीज़ें थीं, उसने एक-एक कर सब विभा को सौंप दीं। उदयादित्य स्थिर और दृढ़प्रतिज्ञ भाव से बैठे हैं। उन्होंने पक्का कर लिया है—हो सकेगा तो सुरमा को यहीं रक्खेंगे नहीं तो उसके साथ चले जायँगे। जब साँझ हुई तब सुरमा का जी घूमने लगा। उसके दोनों पैर थरथराने लगे। आँखें लाल हो गईं। वह शयनागार में जाकर सो रही और बोली—विभा, विभा, शीघ्र उनको एक बार बुलाओ, अब देर नहीं है।

उदयादित्य उस कमरे के द्वार पर ज्योंही आये त्योंही सुरमा बोल उठी—आओ, आओ, मेरा जी कैसा घबरा रहा है। यह कहकर उसने दोनों बाँहें फैला दीं। उदयादित्य को पास आते देख उसने उनके दोनों पैरों को पकड़ लिया। उदयादित्य बैठ गये। सुरमा बड़े कष्ट से साँस ले रही थी। उसका दम फूल रहा था। उसके हाथ-पैर ठंढे हो गये थे। उदयादित्य ने डरकर पुकारा—सुरमा, सुरमा! सुरमा बहुत धीरे से पलक उठा और उदयादित्य के मुँह की ओर देखकर बोली—क्या है प्रियतम! उदयादित्य ने पूछा—सुरमा, क्या है? सुरमा ने कहा—जान पड़ता है, मेरा अन्तकाल आ पहुँचा। यह कहकर उदयादित्य को गले लगाने के लिए हाथ उठाना चाहा, पर उठा न सकी। वह उदयादित्य के मुँह की ओर सिर्फ़ स्थिर दृष्टि से ताकती रही। उदयादित्य ने दोनों हाथों से सुरमा का मस्तक उठाकर कहा—सुरमा, तुम मुझे छोड़कर कहाँ जा रही हो! अब मेरा एक भी अवलम्ब न रहा। सुरमा की आँखों से झर-झरकर आँसू गिरने लगे। उसने विभा के मुँह की ओर पलक उठाकर देखा। विभा उस समय बेसुध हो टकटकी बाँधे सुरमा के मुँह की ओर देख रही थी। जहाँ प्रति दिन सन्ध्या समय सुरमा

और उदयादित्य बैठते थे वह सामने की खिड़की खुली है। आकाश में वैसे ही तारे दिखाई दे रहे हैं, हवा वैसे ही मन्द-मन्द बह रही है। चारों ओर शान्ति छाई हुई है। घर में चिराग़ जलाया गया, राजभवन में पूजा के घड़ी-घण्टा और शङ्ख बजकर रुक गये। सुरमा ने उदयादित्य से धीमे स्वर में कहा--मुझसे जो कुछ भूल-चूक हुई हो उसे क्षमा कीजिए। मैं आपके मुँह से कुछ सुना चाहती हूँ। मेरा सिर घूम रहा है। आँखों से अच्छी तरह दिखाई नहीं देता।

क्रमशः सारे राजभवन में यह ख़बर फैल गई कि सुरमा अपने हाथ से ज़हर खाकर मर रही है। रानी दौड़कर आई। हवेली के सभी लोग दौड़ आये। सुरमा का मुँह निहारकर रानी रो उठी और बोली--सुरमा, मेरी रानी, तू यहीं रह। तुझे कौन कहीं पर भेजता है! तू कहीं मत जा, तू मेरे घर की लक्ष्मी है। सुरमा ने उसी बेहोशी की हालत में सास के पैरों की धूल माथे में लगाई। रानी दुगुने स्वर से रोकर विलाप करने लगी--अरी, तू बे समझे-बूझे क्रोध में आकर क्या कर बैठी!

तब सुरमा का कण्ठ रुद्ध हो गया था। वह कुछ बोलना चाहती थी, पर बोल न सकती थी। जब दो घड़ी रात रही तब वैद्य ने कहा--अब इनका जीवन-दीप बुझ गया। विभा यह सुन-कर सुरमा के बदन से लिपटकर रोने लगी। देखते ही देखते सबेरा हो गया। उदयादित्य सुरमा का मस्तक अपनी गोद में लेकर बैठे ही रह गये।

सोलहवाँ परिच्छेद

आज राजा रामचन्द्र राय गद्दी के ऊपर मसनद के सहारे बैठे हुए गुड़गुड़ी पी रहे हैं। सामने एक भयभात अपराधी खड़ा है। उसका विचार हो रहा है। अपराध यही है कि उस व्यक्ति ने किसी के द्वारा प्रतापादित्य और रामचन्द्र राय के बीच जो घटना हुई थी वह सुनकर उस बात की आलोचना अपनी मण्डली में की थी। यह बात उसके शत्रु-पक्ष के एक आदमी ने राजा के कान तक पहुँचाई। यह सुनकर राजा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसे पकड़वा मँगाया। उस अपराध में उसे फाँसी देना चाहिए अथवा देश से निर्वासित कर देना चाहिए, इसी का विचार होनेवाला है।

राजा ने कहा—साले, तुम्हारी इतनी बड़ी शेखी ?

अपराधी ने रोकर कहा—दुहाई महाराज की। मेरा कुछ दोष नहीं।।

मन्त्री—चुप रहो साले—प्रतापादित्य के साथ हमारे महाराज को बराबर करता है !

दीवान—इस साले को मालूम नहीं कि जब प्रतापादित्य का बाप पहले-पहल राजा हुआ तब उसने राजतिलक पाने के लिए हमारे महाराज के स्वर्गीय पितामह से बड़ी बड़ी प्रार्थनाएँ की थीं। जब वह बहुत गिड़गिड़ाया तब उन्होंने अपने बायें पैर के अँगूठे से उसके माथे पर टीका चढ़ा दिया।

रमाई मुँह बनाकर बोला—"हयूँ, विक्रमादित्य के बेटे प्रतापादित्य को राजा हुए अभी दो ही पीढ़ियाँ हुई हैं। प्रतापादित्य का पितामह था केंचुआ, केंचुए का बेटा हुआ जोंक। प्रजा का लोहू चूसकर जोंक खूब फूल उठा। उस जोंक के बेटे प्रतापादित्य ने आज साँप की भाँति फुफकार मारना सीखा है। हम वंश-परम्परा से इस राजदरबार में नौकरी करते आते हैं। हम

लोग सँपेरे हैं। क्या साँप को नहीं चीन्हते ?" रमाई की बात से अत्यन्त प्रसन्न होकर रामचन्द्र राय विकसित मुँह से तम्बाकू पीने लगे। आजकल दरबार में प्रति दिन प्रतापादित्य के ऊपर दो-एक बार वाग्बाणों की वर्षा ज़रूर होती है। प्रतापादित्य की पीठ को लक्ष्य बनाकर उस पर भरपूर वचनरूपी बाणों की वर्षा होते-होते जब सभासदों के मुहँरूपी तर्कस शरशून्य हो जाते हैं तब दरबार बख़ास्त होता है। जो हो, अपराधी का दिन आज का अच्छा था। उसके बहुत रोने कलपने पर परम प्रतापी राजा रामचन्द्र राय ने हुक्म दिया—अच्छा, जाओ, इस बार छोड़ देता हूँ। आइन्दे फिर कभी ऐसी बात मुँह से न निकालना।

जितने दरबारी थे, सब महाराज का जय जयकार मनाकर चले गये। केवल मन्त्री और रमाई राजा के पास बैठे रहे। फिर प्रतापादित्य की ही बात छिड़ी।

रमाई ने कहा—महाराज, आप तो चले आये, उधर युवराज बेचारे पर बड़ा ही सङ्कट आ पड़ा। राजा का मतलब तो यह था कि लड़की विधवा होगी तो उसके हाथ में जो सोने की चूड़ियाँ हैं उन्हें बेचने से राज ख़ज़ाने में कुछ नक़द आ जायगा। युवराज ने उसमें बाधा डाल दी। इस कारण उनकी एक भी दुर्दशा बाक़ी न रही।

राजा सुनकर हँसने लगे।

मन्त्री—महाराज, सुना है कि प्रतापादित्य आजकल मारे अफ़सोस के सूखे जा रहे हैं। आप उनकी लड़की को कहीं छोड़ न दें, इस चिन्ता से न उन्हें भूख लगती है, और न नींद आती है।

"सचमुच ?" कहकर राजा हँसते हँसते लोट गये। उन्हें इन बातों से बड़ा ही आनन्द हुआ।

मन्त्री—मैंने प्रतापादित्य को कहला भेजा है कि अब अपनी लड़की को यहाँ न भेजें। हमारे महाराज ने जो उनके घर ब्याह

किया, इसी को वे ग़नीमत समझें, इसी में उनके सात पुरखों का उद्धार हो गया। इस पर भी वे चाहते हैं कि हमारे महाराज उनकी लड़की को घर लाकर अपने घर की प्रतिष्ठा बिगाड़ें! इतना बड़ा पुण्य अभी उन्होंने नहीं किया है कि उनकी लड़की चन्द्रद्वीप के राजभवन की अधिकारिणी हो। क्यों रमाई ठाकुर, ठीक है न?

रमाई—हाँ भाई, इसमें सन्देह क्या? महाराज ने जो कीचड़ में पैर रक्खे हैं, सो यह तो कीचड़ का भाग्य है। किन्तु इससे क्या हुआ, घर में प्रवेश करने के समय तो पैर धोकर ही आवेंगे।

इस तरह भाँति भाँति की हँसी उड़ने लगी। प्रतापादित्य और उदयादित्य की काल्पनिक मूर्ति सामने रखकर उन पर अयुक्त वाक्य-बाणों की वर्षा होने लगी। रामचन्द्र राय समझते हैं कि उदयादित्य ने अपनी बहन का ख़याल करके ही उन्हें बचाया है। निःस्वार्थ भाव से वे उनके प्राण कदापि नहीं बचाते।

विभा के ऊपर अब भी रामचन्द्र राय का कुछ कुछ अनुराग है। विभा सुन्दरी है, सुशीला है, युवावस्था में अभी उसने पैर ही रक्खा है। रामचन्द्र राय के साथ विभा का अभी पूर्ण रूप से परिचय भी नहीं हुआ है। प्रतापादित्य से अपमान का बदला लेने के अभिप्राय से जब वे विभा की शय्या पर मुँह फेरकर सो रहे थे, और जब पहली नींद टूट जाने पर आधी रात को उन्होंने देखा कि विभा बिछौने पर बैठी रो रही है, उसके मुखचन्द्र को उदास देख मानों चन्द्रमा खिड़की की राह से अपने कर फैलाकर उसके आँसुओं को पोंछ रहे हैं—उसकी अधखुली छाती रह-रह-कर काँप उठती है तथा उसके पतले कोमल होंठ नवपल्लव की तरह धीरे धीरे हिल रहे हैं तब एकाएक उनके हृदय में दया उमड़ आई। उन्होंने विभा के मस्तक को अपनी छाती से लगा लिया। उसकी आँखों के आँसू पोंछ दिये। विभा के सरस होंठ चूमने के

लिए उनके हृदय में एक प्रकार का आवेग हो आया। विभा की नई जवानी की शोभाराशि देखकर वे चकित से हो रहे। उनके सारे शरीर में मानों एक प्रकार की बिजली दौड़ गई। विभा के ऊपर उनका उत्कट मोह उत्पन्न हुआ। इसी समय बाहर से किसी ने धक्का दिया। उनके मन की लालसा मन ही में बनी रह गई। वही उनके हृदय का प्रथम विकास, वही उनकी वासना का पहला उफान, वही उनके अतृप्त नयनों की स्नेह-भरी दृष्टि प्यासी की प्यासी रह गई। उनकी सभी आशाएँ उनके मन में ज्यों की त्यों रह गईं। वे विभा की रूपराशि का उपभोग न कर सके। फलतः विभा की चाह उनके चित्त में बनी थी। विभा से एक बार मिलने के लिए उनका चित्त अवश्य उत्कण्ठित था। पर बात यह थी कि यदि वे विभा को बुलाने के लिए किसी को भेजते हैं तो लोग उन्हें क्या कहेंगे। सभासद् उन्हें स्त्रैण, स्त्री-लोलुप, स्त्री-भक्त समझेंगे। इसी से वे उसे बुलाने का प्रसङ्ग न चलाते थे।

रमाई और मन्त्री जब वहाँ से चले गये तब राममोहन माल ने सामने आ हाथ जोड़कर निवेदन किया—महाराज!

राजा—क्या है राममोहन?

राममोहन—हुक्म हो तो यह ताबेदार महारानी को बुला ले आवे।

राजा—यह क्यों?

राममोहन—अन्दर महल सूना लगता है। यह मुझसे देखा नहीं जाता। जब हवेली में अन्दर जाता हूँ तब महाराज के घर में किसी को न देखकर मुझे अत्यन्त दुःख होता है। मेरी मालकिन लक्ष्मी हैं, वे यहाँ आकर अपने घर को अपनी शोभा से जगमगावें, जो देखकर हम लोग अपनी आँखों को सफल करें।

राजा ने कहा—राममोहन, तुम पागल हो गये हो क्या? उस स्त्री को मैं अपने घर लाऊँगा?

राममोहन ने आँखें फाड़कर कहा—क्यों महाराज, मेरी मालकिन ने क्या अपराध किया है ?

राजा—क्या कहते हो राममोहन ? प्रतापादित्य की बेटी को मैं अपने घर लाऊँगा ?

राममोहन—क्यों न लावेंगे ? प्रतापादित्य के साथ उनका अब सम्बन्ध कैसा है ? जितने दिनों तक विवाह न हो उतने दिन लड़की बाप की रहती है। विवाह हो जाने पर उस पर बाप का अधिकार नहीं रहता। अब वे आपकी रानी हुईं। यदि आप उनको अपने घर न बुलावें, यदि आप उनका आदर न करें, तो दूसरा कौन करेगा ?

राजा—प्रतापादित्य की बेटी का मेरे साथ व्याह हुआ है। यही उसके लिए बहुत हुआ। भला उसे घर में कैसे लाऊँगा ? ऐसा होने से मेरे घर की प्रतिष्ठा कैसे रह सकेगी ?

राममोहन—प्रतिष्ठा कैसे रह सकेगी ? प्रतिष्ठा उनको ले आने ही में रहेगी। आपने अपनी धर्मपत्नी रानी को दूसरे के घर में छोड़ दिया है। क्या उसके ऊपर आपका कोई अधिकार नहीं है ? उनके ऊपर अन्य व्यक्ति यथेच्छ प्रभुत्व करे—क्या आप इसी में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं ?

राजा—अगर प्रतापादित्य अपनी लड़की को न आने दें ?

राममोहन ने अपनी विशाल छाती को ठोंककर कहा—क्या कहा महाराज ! अगर आने न दें ? इतनी मजाल किसकी जो आने न देगा ? हमारी मालकिन हम लोगों के राजभवन की गृह-लक्ष्मी हैं। किसमें शक्ति है कि उनको हम लोगों के यहाँ न आने देकर अपने पास रख सके ? प्रतापादित्य कितने ही बड़े क्यों न हों, मैं उनके हाथ से महारानी को छीन लाऊँगा। मैं यह प्रतिज्ञा करके जाता हूँ, जैसे होगा अपनी स्वामिनी को जरूर लाऊँगा। यह कहकर राममोहन जाने को उद्यत हुआ।

राजा ने बड़ी जल्दी में कहा—राममोहन, सुनो, सुनो, ज़रा ठहरो। अच्छा। तुम विभा को लाने जाते हो तो जाओ, लेकिन कोई सुनने न पावे। यह बात रमाई किंवा मन्त्री के कानों में न पड़े।

"जो आज्ञा महाराज!" यह कहकर राममोहन चला गया।

यद्यपि राजभवन में राजपत्नी के आने पर सब जानेंगे ही, तथापि उसमें अभी बहुत देर है, उनके आने पर देखा जायगा। पर अभा इस समय लज्जा के हाथ से छुटकारा पाने ही में रामचन्द्र राय की मान-रक्षा है।

—

सत्रहवाँ परिच्छेद

सीताराम शौक़ीन मिज़ाज का आदमी है। न उसके घर में घरनी है और न एक पैसे की आमदनी। इस कारण उसके अन्तःकरण का खिंचाव रुक्मिणी के रूप और रूपा दोनों की ओर विशेष रूप से है। जिस दिन वह देखता है कि आज चूल्हा जलाने का कोई उपाय नहीं, उस दिन वह रुक्मिणी के घर पहुँच जाता है। जिस दिन देखो वह हाथ में छड़ी लिये पतली चादर उड़ाता हुआ मङ्गला के घर की ओर जा रहा है और ज़रा भी उसके चेहरे पर चिन्ता नहीं है, उस दिन समझ जाओ कि उसके घर में भोजन-सामग्री नहीं है। रास्ते में यदि सीताराम से कोई पूछता है कि कहो जी सीताराम, आजकल घर का काम कैसे चलता है तो सीताराम झट विकसित मुख से उत्तर देता है—बड़े मज़े में, रोज़ ही हलुआ-पूरी उड़ती है। कल तो हमारे यहाँ निमन्त्रण ही था। सीताराम की ऐसी लम्बी-चौड़ी बातें सुनकर पूछनेवाला चुप हो रहता था। वह जितना ही क्षीण होता जाता है, उसकी बातों की लम्बाई-चौड़ाई उतनी ही बढ़ रही है।

आज सीताराम को रुपये की बड़ी आवश्यकता है। इसी से वह रुक्मिणी के घर आया है। उसने मुसकुराकर एक बार प्रेम की दृष्टि से रुक्मिणी के मुँह की ओर देखा; पीछे उसने मीठे स्वर में कहा—

भीख में रानी देागी क्या ?
सेाना-रूपा नहीं चाहिए।
प्राण मिलें तेा बच जाऊँ,
मान-रत्न की भिक्षा माँगूँ॥

नहीं भाई, यह गीत इस समय के उपयुक्त नहीं हुआ। मान-रत्न की मुझे अभी उतनी ज़रूरत नहीं। उसकी आवश्यकता होगी तेा फिर कभी देखा जायगा। अभी तेा मुझे थेाड़ा सा सेाना-रुपया मिल जाने ही से काम चलेगा।

रुक्मिणी ने सीताराम से भी अधिक अनुराग प्रकट करके कहा—यदि तुम्हें आवश्यकता होगी तेा वह भी दूँगी। जिसे प्राण दे दिये उसे धन देना कौन बड़ी बात है ? तुम जेा माँगेागे वही दूँगा।

सीताराम ने प्रेम से द्रवित होकर कहा—मैं तुम्हारा भरेासा हर हालत में रखता हूँ। आज कुछ ऐसी ही ज़रूरत आ पड़ी है। तुम मेरे मन में बसती हो, इससे मैं तुम्हारा सब हाल जानता हूँ पर तुम मेरा कुछ भी हाल न जानती होगी। मेरे पास जेा कुछ जमा-पूँजी है वह मेरी माँ के पास रहती है। मैं अपने हाथ में रुपया-पैसा नहीं रखता। आज माँ सबेरे जेाड़ाघाट में अपने दामाद के घर गई है। जाते समय वह रुपया देना भूल गई। मुझे आज ज़रूरी ख़र्च के लिए कुछ रुपये दो। मैं कल ही लौटा दूँगा।

मङ्गला ने मन ही मन हँसकर कहा—तुमको इतना जल्द रुपया लौटाने की क्या आवश्यकता है। जब सुभीता हेा तब रुपया लौटा देना। तुम्हारे हाथ में रुपया देना पानी में फेंकना तेा है नहीं।

मङ्गला का अपने ऊपर ऐसा असाधारण प्रेम देखकर सीताराम का हृदय आनन्द से विह्वल हो गया। वह रसिकता के द्वारा अपने हृदय के आनन्दोद्गार को बाहर कर मङ्गला को रिझाने लगा।

उसने रुक्मिणी के पास खिसककर बड़ी मुहब्बत से कहा—तुम मेरी सुभद्रा हो। मैं तुम्हारा जगन्नाथ हूँ।

रुक्मिणी—चलो हटो, सुभद्रा तो जगन्नाथ की बहन...

सीताराम—यह तुम क्या कहती हो? वह उनकी बहन... तो सुभद्राहरण कैसे हुआ?

रुक्मिणी हँसने लगी। सीताराम ने कहा—हँसती क्या हो? मैं न मानूँगा। मेरे प्रश्न का उत्तर दो। सुभद्रा अगर बहन ही थी तो सुभद्राहरण कैसे हुआ?

सीताराम को यक़ीन था कि उसने ऐसा विकट प्रश्न किया है जिसका जवाब देना सहज नहीं।

रुक्मिणी ने बड़े मीठे स्वर में कहा—दुर मूर्ख!

सीताराम का हृदय पिघलकर मोम हो गया। उसने कहा—मैं मूर्ख तो हई हूँ। तुम्हारे आगे मैं हार मानता हूँ। तुम्हारे निकट मैं हमेशा के लिए मूख हूँ। सीताराम ने मन ही मन सोचा—खूब अच्छा जवाब दिया है, बात बड़े मौक़े की कही है।

सीताराम ने फिर कहा—अच्छा, अगर वह बात तुम्हारे पसन्द ही नहीं है तो बतलाओ क्या कहकर पुकारने से तुम ख़ुश होगी।

रुक्मिणी ने हँसकर कहा—प्राण कहा करो।

सीताराम—प्राण!

रुक्मिणी ने कहा—प्रिये कहो।

सीताराम—प्रिये!

रुक्मिणी—कहो प्रियतमे।

सीताराम—प्रियतमे!

रुक्मिणी—प्राणप्रिये।

सीताराम—प्राणप्रिये !

"अच्छा, प्राणप्रिये, तुम जो रुपया दोगी उसका सूद क्या लोगी ?"

रुक्मिणी ज़रा गर्दन टेढ़ी कर अनखाती हुई बोली—जाओ, जाओ, समझ गई जैसी तुम्हारी प्रीति है। किस मुँह से तुम सूद की शरह पूछते हो ?

सीताराम ने मारे ख़ुशी के फूलकर कहा—नहीं, नहीं, यह कुछ बात नहीं। मैं तुमसे सच थोड़े ही पूछता हूँ। मैं तो हँसी करता हूँ। जाओ प्रियतमे, तुम इतना भी नहीं समझतीं ?

सीताराम की माँ को न मालूम किस रोग ने आ घेरा है। आजकल वह बराबर दामाद के घर जाती है और रुपया बाहर निकालकर रख जाने के विषय में उसकी स्मरण-शक्ति एकदम लुप्त हो गई है। कार्यवश सीताराम को अब अकसर रुक्मिणी के पास आना पड़ता है। आजकल सीताराम और रुक्मिणी दोनों आपस में मिलकर चुप ही चुप न मालूम किस विषय पर विचार कर रहे हैं। बहुत दिनों तक सलाह होने के बाद सीताराम ने कहा—मुझे इतना फ़न्द-फ़रेब नहीं आता। इस विषय में भागवत से बिना मदद लिये काम नहीं चलेगा।

आज सन्ध्या-समय घटा घिर आई और ख़ूब झमककर पानी बरसने लगा। राजभवन के द्वार के किवाड़ हवा के झोंके से शब्द-सहित बार-बार बन्द होने और खुलने लगे। हवा इस वेग से बह रही थी कि बाग़ के बड़े-बड़े पेड़ों की शाखाएँ झुककर धरती में आ लगती थीं। बाढ़ में जो दुर्दशा छोटे-छोटे गाँवों की होती है वही इस झड़ी में मेघों की भी हो रही है। रह-रहकर बिजली का चमकना और मेघों का गरजना धरती को कँपाये देता है। ऐसे समय में उदयादित्य अँधेरे घर में अकेले बैठे हैं। बाहर सन सन करके हवा बह रही है। किवाड़ में हवा का धक्का लगने से फट्-फट् शब्द हो रहा है। उदयादित्य को किसी के आने की आहट मिली।

वे कान लगाकर सुनने लगे। ठीक पैरों ही का शब्द तो है। उनकी छाती ज़ोर से धड़कने लगी, जिससे उन्हें पैरों की आहट भी अब अच्छी तरह सुनाई नहीं देती। इतने में एकाएक द्वार खुल गया। घर में चिराग़ की रोशनी आ पहुँची। उदयादित्य चौंक उठे। सुरमा तो नहीं आई? नहीं, यह कभी सम्भव नहीं। हाथ में चिराग़ लिये एक स्त्री को चुपचाप घर में प्रवेश करते देख वे आँखें मूँदकर बोले—कौन, सुरमा? पीछे उन्होंने आँख खोलकर देखा तो सुरमा नहीं है।

स्त्री ने चिराग़ रखकर कहा—क्यों प्यारे! क्या मुझे अब एकदम भूल गये? क्या अब कभी स्वप्न में भी मेरा स्मरण नहीं होता?

यह वचनरूपी वज्रपात सुनकर मानों उदयादित्य की मोहनिद्रा भग्न हुई। उन्होंने उस स्त्री की ओर बड़े ग़ौर से देखा। इतने में बालिका जाग उठी और "काका, काका" कहकर रोने लगी। उदयादित्य उसे बिछौने पर लिटाकर सोचने लगे कि यह औरत कौन है, कैसे यहाँ आई, मैं इसके प्रश्न का क्या उत्तर दूँ, यहाँ से भागकर कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? वे यों ही सोच रहे थे कि वह स्त्री उनके पास आकर और सिर हिलाकर कहने लगी—भौंचक से क्यों हो रहे हो? क्या अब भी मुझे नहीं पहचाना? यदि ऐसा ही करना था तो उस दिन तुमने उतनी आशा देकर मुझे आसमान पर क्यों चढ़ा दिया था? उदयादित्य कुछ न बोले, चुपचाप खड़े हो रहे।

रुक्मिणी ने अपना मोहनास्त्र तब निकाला। उसने रोकर कहा—मैंने तुम्हारा कौन सा अपराध किया है, जिससे मैं तुम्हारी आँखों में अब इस तरह गड़ती हूँ! तुम्हीं ने तो मेरा सर्वनाश किया। जिस युवती ने एक दिन युवराज को अपना तन-मन दे डाला वह आज भिखारिन बनकर गली-गली भटकती फिरती है। इस फूटे कपार में विधाता ने क्या यही लिखा था?

इस ब्रह्मास्त्र की चोट उदयादित्य के हृदय में कुछ ज़रूर लगी। उनके मन में एकाएक हुआ—कौन जाने, शायद मैंने ही इसका सर्वनाश किया हो। अपने ऊपर की बीती बात वे भूल गये। जवानी के जोश में रुक्मिणी ने जो उन्हें पग-पग में प्रलोभन दिखलाया था, प्रतिदिन जो उनके आगे जाल फैलाये बैठी रहती थी, भँवर की तरह जिसने उनको अपनी दोनों बाँहों के बीच नचाकर एक ही घड़ी में पाताल के घोर अन्धकार में डाल दिया था—ये सभी बातें वे भूल गये हैं। देखा कि रुक्मिणी का कपड़ा मैला और फटा है। रुक्मिणी रो रही है। दयालुचित्त उदयादित्य ने कहा—तुम्हें क्या चाहिए?

रुक्मिणी ने कहा—मुझे और कुछ नहीं चाहिए, मैं सिर्फ़ प्रेम चाहती हूँ। मैं इस खिड़की में बैठकर और तुम्हारी छाती में अपना मुँह छिपाकर तुमसे सुहाग-भाग चाहती हूँ। क्यों, सुरमा के मुँह की अपेक्षा क्या मेरा मुँह काला है? अगर काला भी है तो वह तुम्हारे ही लिए गली-गली की धूल छानने के कारण। पहले ऐसा नहीं था।

यह कहकर रुक्मिणी उदयादित्य के पलँग पर बैठने चली। उदयादित्य अब अपने को नहीं रोक सके। वे अधीर होकर बोल उठे—हाँ, हाँ, इस बिछौने पर मत बैठना।

रुक्मिणी चुटीली साँपिन की तरह सिर उठाकर बोली—क्यों न बैठूँ?

उदयादित्य ने उसके आगे खड़े होकर और रास्ता रोककर कहा—नहीं, तुम उस पलँग के पास मत जाओ। तुम क्या चाहती हो सो कहो; मैं अभी देता हूँ।

रुक्मिणी ने कहा—अच्छा, अपनी उँगली की यह अँगूठी दे दो।

उदयादित्य ने तुरन्त अपने हाथ से अँगूठी निकालकर उसे दे दी। रुक्मिणी अपनी उँगली में अँगूठी पहनकर घर से बाहर

चली गई। वह सोचने लगी, डाकिनी के मन्त्र का प्रभाव अब भी मन से दूर नहीं हुआ। अच्छा, कुछ दिन और सही; उसके बाद मेरा मन्त्र जरूर फलित होगा। रुक्मिणी के चले जाने पर उदयादित्य बिछौने पर लेट रहे। वे दोनों बाँहों से मुँह ढाँपकर और रोकर बोले—हाय, सुरमा तू कहाँ गई? आज मेरे इस वज्राहत कलेजे की आग कौन बुझावेगा?

——

अठारहवाँ परिच्छेद

भागवत की हालत कुछ अच्छी नहीं है। वह कई दिन से चुपचाप बैठकर बराबर तम्बाकू फूंकता रहता है। वह जब ध्यानस्थ होकर जोर से तम्बाकू पीता है तब पड़ोसियों के मन में भय उत्पन्न होता है। कारण, उसके मुँह से जैसा काला धुआँ टेढ़ा होकर निकलता है वैसा ही कोई कालापन लिये कौटिल्यचक्र उसके मन में भी चलता रहता है। तो भी भागवत है बड़ा धर्मात्मा। उसमें यदि कुछ दोष है तो यही कि वह किसी के साथ मिलता-जुलता नहीं। हरिनाम की माला (सुमरनी) बराबर हाथ में लिये रहता है। किसी के साथ अधिक बातचीत नहीं करता। दूसरे की चर्चा चलाना पसन्द नहीं। किन्तु किसी के ऊपर जब भारी सङ्कट आ पड़ता है तब उसे भागवत के सदृश पक्की सलाह कोई नहीं दे सकता। भागवत अपनी इच्छा से कभी किसी की बुराई नहीं करता। हाँ, अगर कोई उसकी बुराई करे तो भागवत इस देह से उसे कभी भूल भी नहीं सकता। उसका बदला लेकर ही वह अपने हाथ का हुक्का नीचे रखता है। मतलब यह कि संसार में जो लोग अच्छे गिने जाते हैं, भागवत भी उन्हीं में है। टोले-महल्ले के लोग भी

उसका आदर करते हैं। तङ्गदस्ती की हालत में भागवत ने कुछ क़र्ज़ लिया था, किन्तु उसे लोटा-थाली बेचकर चुका दिया है।

एक दिन सबेरे सीताराम ने आकर भागवत से पूछा—कहो भाइ, कैसे हो ?

भागवत ने कहा—हालत अच्छी नहीं है।

सीताराम ने कहा—क्यों, कुछ कहो भी तो ?

भागवत ने कुछ देर तक तम्बाकू पीकर फिर सीताराम के हाथ में हुक्का थमाया और कहा—बड़े कष्ट से समय बीत रहा है।

सीताराम ने कहा—सच कहो, ऐसी हालत एकाएक क्यों हो गई ?

भागवत ने कुछ रुष्ट होकर कहा—ऐसी हालत क्यों हो गई ? यह बात क्या तुमसे छिपी है ? मैं तो समझता हूँ कि जो हालत मेरी है वही तुम्हारी भी है।

सीताराम ने कुछ ठिठककर कहा—नहीं भाई, मैं यह नहीं पूछता। मैं तो यह पूछता हूँ कि तुम कुछ क़र्ज़ क्यों नहीं लेते ?

भागवत ने कहा—क़र्ज़ लेकर तो फिर चुकाना होगा। क्या देकर क़र्ज़ चुकाऊँगा ? बेचने या गिरवी रखने लायक़ कोई वस्तु भी तो मेरे पास नहीं।

सीताराम ने गर्व के साथ कहा—तुमको कितने रुपये चाहिएँ ? मैं दूँगा।

भागवत ने कहा—वाह, अगर तुम्हारे पास इतने अधिक रुपये हैं कि मुट्ठी भर रुपया पानी में फेंक देने पर भी उसकी कुछ परवा नहीं तो दस रुपये मुझे भी दे डालो, किन्तु यह बात पहले ही सुन रक्खो। मुझको क़र्ज़ चुकाने की सामर्थ्य नहीं है।

सीताराम ने कहा—भाई, उसके लिए तुम चिन्ता न करो।

सीताराम से इस तरह सहायता पाने की बात सुनकर मित्रता की तरङ्ग में भागवत एकदम उछल उठा हो, यह बात नहीं। वह एक चिलम तम्बाकू भरकर चुपचाप पीने लगा।

सीताराम धीरे-धीरे कहने लगा—भाई, राजा की बेइन्साफ़ी से तो हम लोगों की रोटी मारी गई।

भागवत ने कहा—तुम्हारे चेहरे से तो ऐसा नहीं जान पड़ता।

सीताराम की वह उदारता भागवत को सह्य न हुई। वह मन ही मन कुछ चिढ़ सा गया था।

सीताराम ने कहा—नहीं भाई, एक बात कहता हूँ—आज नहीं तो दस रोज़ के बाद ही सही। रोटी मिलना कठिन होगा ही।

भागवत—राजा यदि अन्याय ही करे तो हम लोग क्या कर सकते हैं!

सीताराम—अहा, युवराज जब राजा होंगे तब यशोहर में रामराज्य होगा। भगवान् उतने दिनों तक हम लोगों को जीवित रक्खें।

भागवत ने चिढ़कर कहा—भाई! हमें इन बातों से क्या प्रयोजन? तुम बड़े आदमी हो, तुम अपने घर में बैठकर राजा और मन्त्री की पञ्चायत किया करो। तुम्हें शोभा देगी। मैं ग़रीब आदमी हूँ। मुझे इतना सामर्थ्य कहाँ कि तुम्हारी बराबरी कर सकूँ।

"भाई, क्रोध क्यों करते हो? पहले मेरी बातें तो सुन लो।" यह कहकर सीताराम चुपके से भागवत के कान में कुछ कहने लगा।

भागवत और भी क्रुद्ध होकर बोला—देखो सीताराम, मैं तुमसे समझाकर कहे देता हूँ। मेरे सामने फिर ऐसी बात ज़बान से न निकालना।

भागवत की बात सुनकर सीताराम उसी समय वहाँ से चला गया। भागवत ध्यानस्थ होकर सारे दिन न मालूम क्या सोचता रहा। दूसरे दिन सबेरे उसने ख़ुद सीताराम के पास जाकर कहा—सीताराम, कल तुमने जो बात कही थी वह बहुत ठीक थी।

सीताराम गर्व से फूल उठा और बोला—भाई, तुमसे ठीक न कहूँगा तो क्या झूठ कहूँगा ?

भागवत—आज उसी विषय में तुमसे सलाह करने आया हूँ।

सीताराम और भी गर्वित हो उठा। कई दिनों तक उस विषय में बराबर विचार होता रहा।

विचार करके सिद्धान्त हुआ कि एक जाली दरख्वास्त लिखी जाय जिसका मज़मून यह हो कि प्रतापादित्य के ऊपर विद्रोहिता का इलज़ाम लगाकर युवराज स्वयं राज्य पाने के लिए बादशाह से प्रार्थना कर रहे हैं। उस दरख्वास्त में युवराज की मोहर अङ्कित रहेगी। रुक्मिणी जो उनसे अँगूठी ले गई थी उस पर उनका नाम खुदा हुआ है।

सलाह के मुताबिक़ काम हुआ। एक जाली दरख्वास्त लिखी गई। उस पर युवराज के नाम की मोहर अङ्कित की गई। बेवकूफ़ सीताराम को यह काम सौंपना ठीक नहीं है, अतएव निश्चय हुआ कि भागवत ही दरख्वास्त लेकर दिल्लीपति के पास जायँ।

भागवत उस दरख्वास्त को लेकर दिल्ली की तरफ़ न जाकर महाराज प्रतापादित्य के पास गया। उसने महाराज से निवेदन किया—उदयादित्य का एक नौकर यह दरख्वास्त लेकर दिल्ली की तरफ़ जा रहा था। मुझे किसी तरह इस बात का पता लग गया, इससे मैंने उससे यह काग़ज़ छीन लिया है। वह उसी समय देश छोड़कर भाग गया। वह दरख्वास्त लेकर मैं महाराज के पास आ रहा हूँ।

भागवत ने सीताराम का कोई ज़िक्र न किया। दरख्वास्त पढ़कर प्रतापादित्य की क्या अवस्था हुई। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि भागवत फिर अपने काम पर बहाल हो गया।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

विभा की आँखों के सामने चारों ओर अँधेरा सा छा गया है, मानों भविष्य का कोई एक मर्मभेदी दुःख, नैराश्य और जीवन के समस्त सुख की अवसन्नता उसके पास आने की प्रतीक्षा कर रही है। पल-पल पर वे उनके निकट खिसकते आ रहे हैं। जीवन-सुख को शून्य करनेवाले सीमाहीन भविष्य अदृष्ट की जो आशङ्का है उस आशङ्का की छाया ने मानों विभा के हृदय की आशा-प्रभा को ढक लिया। विभा का कहीं भा जी नहीं लगता। उसका मन हमेशा चिन्ता से भरा रहता है। वह अकेली बिछौने पर पड़ी रहती है।

इन्हीं दिनों एक दिन सबेरे राममोहन ने आकर "दुलहिन साहबा की जय हो" कहकर विभा को प्रणाम किया। विभा का हृदय इस तरह उमँग उठा जैसे उसके ऊपर एकाएक आनन्द का मेघ उमड़ आया हो। उसके नयनों में आनन्द का नीर भर आया। वह चकित होकर बोली—मोहन, तुम आ गये।

"हाँ, सरकार, मैंने देखा कि आप सेवक को भूल गई हैं। इसलिए सोचा कि एक बार आपको अपना स्मरण दिला आऊँ।"

विभा ने राममोहन से कितनी ही बातें पूछने का इरादा किया पर लज्जा से कुछ पूछ न सकी। पूछने की बात होठों तक आती थी पर मुँह से बाहर न निकलती थी। चन्द्रद्वीप का कुशल संवाद सुनने के लिए विभा का जी व्याकुल हो उठा।

राममोहन ने विभा के मुँह की ओर देखकर कहा—क्यों माँ, तुम्हारा मुँह ऐसा उदास क्यों है? तुम्हारी आँखों के नीचे झाँई पड़ गई है। ओठों में हँसी नहीं। सिर के बाल रूखे हैं। माँ, अब अपने घर चलो। मालूम होता है, यहाँ तुम्हारी हिफ़ाज़त करनेवाला कोई नहीं।

विभा सूखी हँसी हँसने लगी, पर कुछ बोली नहीं। हसी रुकने पर उसकी आँखों से आँसू बह चले। वे उसके सूखे हुए मलिन गालों को भिगोकर नीचे गिरने लगे, जो रोके भी नहीं रुके। बहुत दिनों तक अपमानित होने के बाद सम्मान पाने पर जो एक प्रकार की ग्लानि मन में उपज आती है उसी कोमल प्रेमपूर्ण ग्लानि से रोकर विभा ने आँसू बहा डाले। मन ही मन कहा—क्या इतने दिनों पर आज मेरी सुध ली गई है?

राममोहन से भी न रहा गया। उसकी आँखों में भी आँसू भर आये। उसने कहा—माँ, यह क्या? क्यों रो रही हो? रोना अशुभ है। तुम लक्ष्मी हो। हँसते-हँसते हमारे घर चलो। आज शुभ दिन में आँखों के आँसू पोंछ डालो।

रानी के मन में यह डर था कि शायद दामाद उनकी विभा को ग्रहण न करें। राममोहन विभा को बुलाने आया है—यह सुनकर उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। राममोहन को बुलाकर जामाता का कुशल पूछा, बड़ी खातिर से उसको भोजन कराया। राममोहन के मुँह से जमाई का कुशल-समाचार सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुईं और खुशी-खुशी वह दिन बिताया। कल बिदा का अच्छा दिन है। निश्चय हुआ कि कल सबेरे ही विभा को ससुराल भेज दिया जाय। प्रतापादित्य ने इस विषय में अपनी कोई असम्मति प्रकट न की।

बिदा की जब सभी बातें ठीक हो चुकीं तब विभा एक बार उदयादित्य के पास गई। उदयादित्य अकेले बैठे कुछ सोच रहे थे।

विभा को देखकर एकाएक कुछ चकित होकर बोले—विभा, तुम अपने घर जाती हो, यह सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। तुम वहाँ सुख से रहोगी। मैं आशीर्वाद देता हूँ—तुम लक्ष्मी-स्वरूपा होकर स्वामी के घर को सुशोभित करो।

उदयादित्य के पैर पकड़कर विभा रोने लगी। उदयादित्य की आँखों से आँसू गिरने लगे। उन्होंने विभा के माथे पर हाथ

रखकर कहा—रोती क्यों हो ? विभा, यहाँ तुमको कौन सुख था ? चारों ओर केवल दुःख, कष्ट और शोक हा शोक छाये थे। इस कैदखाने से भागकर अब तुम बचीं।

विभा जब उठी तब उदयादित्य ने कहा—जाती हो ? अच्छा, जाओ। स्वामी के घर जाकर हमें एकदम भूल मत जाना। कभी-कभी याद करती रहना। अपना कुशल-समाचार बराबर भेजा करना।

विभा ने राममोहन के पास जाकर कहा—मैं अब न जा सकूँगी।

राममोहन ने विस्मित होकर पूछा—क्यों ?

विभा ने कहा—मैं अभी न जा सकूँगी। मैं भैया को अकेले छोड़कर कैसे जाऊँ ? मेरे ही कारण उनको इतना कष्ट उठाना पड़ा है और मैं ऐसी पामर जो उनको यहाँ इस अवस्था में छोड़कर सुख भोगने जाऊँ ? जितने दिन तक उनके मन में तिलमात्र भी कष्ट रहेगा उतने दिन तक मैं भी उनके साथ रहकर कष्ट भोगूँगी। यहाँ मेरी तरह उनकी सेवा कौन करेगा ? यह कहकर विभा रोती हुई चली गई।

अन्तःपुर में बड़ा हल्ला हुआ। रानी आकर विभा की भर्त्सना करने लगीं। अनेक प्रकार से धमकाकर उसे कितना ही समझाया-बुझाया। विभा ने सिर्फ़ यही कहा—नहीं माँ, मैं न जा सकूँगी।

रानी ने रोकर रोष के साथ कहा—मैंने ऐसी हठीली लड़की तो कहीं देखी नहीं। उन्होंने महाराज के पास जाकर सब हाल कहा। महाराज ने बड़े शान्त भाव से कहा—अच्छा तो, यदि विभा के जाने की इच्छा नहीं है तो क्यों जायगी ?

रानी ने निरुपाय होकर और हाथ चमकाकर कहा—आप लोगों के जी में जो आवे सो करें, मैं अब इन बातों में न पड़ूँगी।

यह समाचार सुनकर उदयादित्य विस्मित हुए। उन्होंने विभा के पास जाकर उसे बहुत तरह से समझाया। विभा चुप होकर रोने लगी। उनकी बात पर विभा ने कुछ ध्यान न दिया।

राममोहन ने हताश होकर बड़ी उदासी के साथ कहा—माँ, तो मैं अब जाता हूँ। महाराज से जाकर क्या निवेदन करूँगा ?

विभा कुछ न बोली।

"अच्छा, तो चलता हूँ" कहकर और विभा को प्रणाम करके राममोहन बिदा हुआ। विभा एकदम आकुल होकर रो उठी। उसने बड़ी अधीरता से पुकारा—मोहन।

मोहन ने लौटकर कहा—क्या है ?

विभा ने कहा—महाराज से जाकर कहना, वे मेरा अपराध क्षमा करें। उनके बुला भेजने पर भी मैं न जा सकी, यह केवल मेरा अभाग्य है।

राममोहन ने अत्यन्त उदासीनता के साथ कहा—जो आपका आज्ञा। यह कहकर वह विभा को प्रणाम करके चला गया। विभा ने देखा, राममोहन विभा के हृदय का असली भाव कुछ न समझ सका। विभा के मन में इस बात की भारी चिन्ता हुई। एक तो उसका मन जहाँ जाने के लिए इतने दिनों से व्यग्र हो रहा था वहाँ वह जा न सकी। दूसरे, जो राममोहन उस पर सच्ची भक्ति रखता था वही रूठकर चला गया। इन बातों को सोचकर विभा के मन में जो कष्ट हो रहा था, वह उसी का हृदय जानता था।

विभा ससुराल न गई। वह अपनी आँखों के आँसू पोंछकर और हृदय को वज्र सा कठोर बनाकर अपने भाई की सेवा-शुश्रूषा के लिए रह गई। वह दुबली-पतली मलिन छाया की तरह चुपचाप घर के आवश्यक काम करने लगी। उदयादित्य वात्सल्य भाव से भरी हुई कोई बात जब विभा से कहते हैं, तब वह आँखें नीची करके कृतज्ञता की मुसकुराहट से अपने होठों को ज़रा विकसित करती है। सन्ध्या-समय वह उदयादित्य के पैरों के पास बैठकर कुछ बातें करना चाहती है। रानी क्रोधवश जब कभी विभा को झिड़कती हैं तब वह चुपचाप सुन लेती है। उनकी कड़ी से कड़ी

बातों का मर्म चुपचाप सह लेती है और वहाँ से किसी ओर टल जाती है। कभी कोई स्त्री विभा का चिबुक धरकर कहती है—विभा, तू इस तरह सूखी क्यों जा रही है, तो विभा कुछ जवाब नहीं देती, सिर्फ़ मुसकराती है।

इसी समय भागवत ने पूर्वोक्त जाली दरख्वास्त लेकर प्रतापादित्य को दिखलाई, जिसे देखकर वे प्रज्वलित हो उठे। इसके बाद, बहुत सोच-विचार कर, उन्होंने उदयादित्य को क़ैद करने का हुक्म दिया। मन्त्री ने कहा—महाराज, युवराज ने यह काम किया होगा, यह किसी तरह विश्वास नहीं होता। जो सुनता है वही दाँतों जीभ काटता है और कहता है, राम-राम, यह बात सुनने की नहीं। युवराज से ऐसा काम होगा! यह कभी सम्भव नहीं।

प्रतापादित्य ने कहा—मुझे भी इस पर कुछ विशेष विश्वास नहीं होता; किन्तु तो भी उदयादित्य कारागार में रहेगा इसमें हानि ही क्या? वहाँ उसे किसी तरह की तकलीफ़ न दी जाय। केवल यही कि वह छिपे तौर पर कुछ करने न पावे। पहरा बैठा दिया जायगा।

— —

बोसवाँ परिच्छेद

जब राममोहन अकेला चन्द्रद्वीप लौट आया और हाथ जोड़कर अपराधी की तरह राजा के सामने जाकर खड़ा हुआ तब रामचन्द्र राय का सर्वाङ्ग जल उठा। उन्होंने सोच रक्खा था कि विभा के आने पर उसे प्रतापादित्य और उनके वंश के सम्बन्ध में दो-चार बातें सुनाकर अपने श्वशुर के ऊपर का क्रोध निकालेंगे। कौन-कौन बात कहेंगे, किस तरह कहेंगे, किस वक्त कहेंगे, इन

सब बातों को उन्होंने मन ही मन ठीक कर रक्खा था। ऐसे अवसर पर राममोहन को अकेले आते देख रामचन्द्र बड़े ही विस्मित होकर बोले—राममोहन, क्या हुआ ?

राममोहन—कार्य सिद्ध न हुआ।

राजा—विभा को नहीं ला सके ?

राममोहन—नहीं महाराज, बुरे मुहूर्त्त में यहाँ से चला था।

राजा अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोल उठे—गधे, तुमको किसने कहा था ? जब मैंने बार-बार तुम्हें रोका था, तब तुमने माना नहीं। छाती ठोंककर गये, अब—

राममोहन ने कपार पर हाथ रखकर कहा—महाराज, यह मेरे कर्म का दोष है।

रामचन्द्र राय और अधिक क्रुद्ध होकर बोले—रामचन्द्र राय की बेइज्जती ! गधे, तुम मेरा नाम लेकर भीख माँगने गये और प्रतापादित्य ने वह भी न दी। इतनी बड़ी बेइज्जती आज तक मेरे खानदान में किसी की नहीं हुई थी।

राममोहन ने अपने झुके हुए सिर को उठाकर कुछ गर्व के साथ कहा—आप यह न कहें। प्रतापादित्य यदि बाधा देते तो मैं बलपूर्वक विभा को ले आता। यह तो मैं यहाँ से प्रतिज्ञा करके ही गया था। महाराज, जब मैं आपका हुक्म तामील करने गया था तब मैं प्रतापादित्य का भय थोड़े ही करता। प्रतापादित्य राजा है इससे क्या, मेरे राजा तो वे नहीं हैं।

राजा ने कहा—तो काम क्यों न हुआ ?

राममोहन बड़ी देर तक चुप रहा। उसकी आँखें डबडबा आईं।

राजा ने अधीर होकर कहा—राममोहन, जल्दी बोलो।

राममोहन ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज—

राजा—क्या, कहो।

राममोहन—"महाराज, दुलहिन साहबा ने स्वयं आने से इनकार किया।" राममोहन की आँखों से आँसू गिरने लगे। मालूम होता है, ये आँसू ग्लानि के थे। इस अश्रुपात का कारण यही जान पड़ता है कि दुलहिन के ऊपर उसका इतना विश्वास था कि जिसके बल पर वह छाती ठोंककर बड़ी ख़ुशी के साथ उनकी बिदा कराने गया था। पर वे न आईं। उन्होंने उसका मान न रक्खा। क्या जाने, क्या समझकर राममोहन अपनी आँखों के आँसू नहीं रोक सका।

यह सुनकर राजा एकदम उठ खड़े हुए और आँखें विस्फारित करके बोले—"अच्छा।" बड़ी देर तक उनके मुँह से और कोई बात न निकली।

"आने से इनकार किया। अच्छा, गधे, तुम मेरे सामने से अभी हटो; मैं तुम्हारा मुँह देखना नहीं चाहता।"

राममोहन चुपचाप वहाँ से चला गया। वह समझ गया कि सब उसी का दोष है, अतएव यह दण्ड उसे उचित ही जान पड़ा। उसने इसे कुछ अन्याय न समझा।

राजा किस तरह इस अपमान का बदला लेंगे। यह किसी तरह उनकी समझ में न आया। प्रतापादित्य का कुछ कर ही नहीं सकते। विभा भी उनके क़ब्ज़े से बाहर है। इससे रामचन्द्र राय अधीर होकर घूमने लगे।

दो ही दिन में यह ख़बर विविध आकार धारण करके चारों ओर फैल गई। बात इतनी बढ़ गई कि इसका बिना बदला लिये कल्याण नहीं। यहाँ तक कि प्रजा भी बदला लेने के लिए व्यग्र हो उठी। लोगों ने कहा—"हमारे महाराज का ऐसा अपमान!" मानों अपमान सबके रोम-रोम में घुसा है। एक तो रामचन्द्र राय के मन में प्रतिहिंसा की ओर प्रवृत्ति स्वभाव से ही बलवती है, दूसरे उनके मन में यह होने लगा कि अपमान का बदला न लेने से प्रजा

क्या समझेगी, नौकर लोग क्या समझेंगे और रमाई क्या समझेगा। जब वे मन में कल्पना करके देखते हैं कि इस बात को लेकर रमाई किसी एक व्यक्ति के पास बैठकर उपहास कर रहा है तब वे बहुत ही बेचैन हो जाते हैं।

एक दिन दरबार में मन्त्री ने निवेदन किया—महाराज, आप दूसरा विवाह कर लें।

रमाई ने कहा—प्रतापादित्य की लड़की अपने भाई के साथ रहे।

रमाई की ओर देखकर और हँसकर राजा बोले—रमाई, तुम ठीक कहते हो।

दीवान—मन्त्री महाशय ने ठीक कहा है। ऐसा होने से प्रतापादित्य और उनकी बेटी (विभा) को अच्छी शिक्षा मिलेगी।

"इस शुभ कार्य में अपने वर्तमान श्वशुर महाशय के पास निमन्त्रण-पत्र भेजना न भूलिए। क्या जानें, निमन्त्रण-पत्र न पाने से उनके मन में रञ्ज हो।" यह कहकर रमाई ने आँखें मिचकाईं। दरबार के सब लोग हँसने लगे; जो लोग कुछ दूर पर बैठे थे, और इस कारण जिन्हें कुछ सुन न पड़ा, वे लोग भी हँसी में बिना योग दिये न रह सके।

रमाई—महाराज, फलदान के समय दस्तूर के लिए सधवा स्त्रियों में यशोहर से अपनी सास को बुला भेजिए। और "मिष्टान्नमितरे जनाः" प्रतापादित्य की बेटी को एक थाल मिठाई भेज दीजिएगा। उसके साथ दो कच्चे केले भी!

राजा हँसते-हँसते लोट गये। सभासद् रुमाल से मुँह छिपाकर और मुँह फेरकर हँसने लगे। फर्नान्डिज़ सबकी आँखें बचाकर वहाँ से चुपचाप चला गया।

दीवानजी ने एक बार रसिकता करने की चेष्टा की। वे बोले—"मिष्टान्नमितरे जनाः" यदि और लोगों के भाग्य में मिष्टान्न ही हो

तब तो सब मिठाइयाँ यशोहर में ही ख़र्च हो जायँगी। क्या चन्द्र-द्वीप में मिठाई खाने के योग्य लोग नहीं हैं?

यह बात सुनकर किसी को हँसी न आई। राजा चुप होकर गुड़गुड़ी पीने लगे। सभासद् ज्यों के त्यों बैठे रहे। रमाई ने दीवानजी की ओर एक बार चकित की तरह देखा। एक मन्त्री ने खेद के साथ कहा—दीवानजी, आप राजा साहब के ब्याह में क्या मिठाई का बन्दोबस्त इतना कम करेंगे कि वह यशोहर में ही बँटकर ख़तम हो जाय?

दीवानजी बेचारे सिर खुजलाने लगे।

विवाह की सब बातें पक्की हुईं।

— —

इक्कीसवाँ परिच्छेद

उदयादित्य जहाँ क़ैद किये गये हैं वह राजभवन से लगा हुआ एक छोटा सा मकान है। राजभवन के ठीक दक्खिन की ओर एक राजमार्ग है और उसके पूरब ओर एक चौड़ी दीवार है। उसी पर पहरेदार लोग घूम-फिरकर पहरा दे रहे हैं। जिस घर में उदयादित्य बन्द किये गये हैं, उसमें एक छोटी सी खिड़की है। उस खिड़की की राह से थोड़ा सा आकाश, एक बँसवाड़ी और एक शिवालय देख पड़ता है। जब उदयादित्य कारागार में प्रविष्ट हुए तब साँझ हो चुकी थी। वे खिड़की के पास मुँह रखकर धरती पर बैठ गये। बरसात का मौसम है। आकाश में चारों ओर बादल घिरे हैं। सड़क पर कहीं-कहीं पानी है। निःशब्द रात में दो-एक मुसाफ़िर सड़क पर जा रहे हैं। पानी में चलने के कारण उनके पैरों का छप-छप शब्द हो रहा है। पूरब तरफ़ से कारागार

के हृदय की धड़कन की तरह पहरेदारों के चलने की आहट बराबर उनके कानों में आ रही है। क्रमशः पहर पर पहर बीतने लगा। दूर से चौकीदारों के पुकारने की आवाज़ कुछ-कुछ सुनाई देने लगी। आकाश में एक भी तारा दिखाई नहीं देता। जिस बँसवाड़ी की ओर उदयादित्य दृष्टि किये बैठे थे, वह बिलकुल जुगनुओं के बीच छिप गई। उस रात में उदयादित्य को नींद न आई। वे खिड़की के पास बैठकर पहरेदारों के पैरों की आहट बराबर सुनते रहे।

विभा आज सन्ध्या-समय एक बार हवेली के बग़ीचे में टहलने गई है। इधर हवेली में लोगों की भीड़ है। चारों ओर सब लोग—नौकर-चाकर, फूफी, मौसी—पूछ रहे हैं—"क्या हुआ? क्या वृत्तान्त है?" आँसू की प्रत्येक बूँद का हिसाब देना पड़ता है, प्रत्येक ठण्ढी साँस का विस्तृत भाष्य और समालोचना होने लगती है। मालूम होता है, विभा कैफ़ियत देते-देते थक गई, इससे वह बग़ीचे की तरफ़ गई है। रात होने लगी। राजभवन की रोशनी एक-एक कर सब बुझ गई। झाऊ-वृक्ष के नीचे विभा बैठी है। वह स्वभाव से ही डरपोक है, किन्तु आज उसे डर नहीं लगता है। जितना ही अन्धकार बढ़ रहा है उतना ही विभा को ऐसा लगता है, जैसे उसके पाँव के नीचे की धरती कोई उठाये लिये जा रहा है। मानों किसी ने उसे सुख से, शान्ति से और संसार के किनारे से ढकेलकर नीचे गिरा दिया है। वह अगाध अन्धकार के समुद्र में जा गिरी है।

इस चराचरव्यापी घनघोर अन्धकार के ऊपर मानों विधाता ने विभा का भविष्य अदृष्ट लिख दिया है। उसी का मानो वह अकेली बैठकर पढ़ रही है। इसी से उसकी आँखों में आँसू नहीं। देह निश्चेष्ट है और पलकें खुली हैं। दो पहर रात बीत जाने के बाद हवा कुछ ज़ोर से चली; अँधेरे में पेड़ हिलने लगे।

हवा वहाँ से कुछ दूर हटकर मानों बच्चे की तरह रोने लगी। विभा के मन में कल्पना होने लगी मानों बहुत दूर समुद्र के किनारे बैठकर विभा के बड़े हौसले और स्नेह के छोटे-छोटे बच्चे हाथ-पैर पटककर रो रहे हैं, और व्याकुल होकर विभा को माँ-माँ कहकर पुकार रहे हैं। वे विभा की गोद में आना चाहते हैं, पर उन्हें आने का रास्ता दिखाई नहीं देता, मानों उनके चिल्लाने की आवाज़ शतलक्ष योजन से घोर अन्धकार को फाड़कर विभा के कानों में आ पहुँची है। विभा के हृदय ने मानों अधीर होकर कहा—"कौन है रे? तुम सब कौन हो? तुम इस तरह क्यों रो रहे हो? तुम लोग कहाँ हो, दिखाई क्यों नहीं देते?" विभा मानों मन ही मन उस शतलक्ष योजन अन्धकारमय मार्ग से अकेली चल पड़ी। हज़ार वर्ष तक मानों बराबर चलती ही रही, लेकिन रास्ते का अन्त न मिला और न कोई देखने ही में आया। केवल उस वायुहीन, शब्दहीन, दिनरात्रिहीन, जनशून्य, प्रकाशशून्य और दिशाशून्य घोर अन्धकार में खड़ी होकर उसने उसी तरह रोने की आवाज़ सुनी। वह और कुछ नहीं, वही वायु की सनसनाहट का शब्द मात्र था।

विभा ने सारी रात जागकर बिता डाली। दूसरे दिन उसने क़ैदख़ाने में उदयादित्य के पास जाने के लिए बड़ी कोशिश की। वहाँ उसके जाने की मनाही थी। सारे दिन वह रोती ही रही। आख़िर वह स्वयं प्रतापादित्य के पास गई और उनके पैरों में लिपट गई। बहुत-बहुत आरज़ू-मिन्नत करने पर उसे जाने की आज्ञा मिली। दूसरे दिन सुबह होते न होते विभा चारपाई से उठकर क़ैदख़ाने में गई। वहाँ जाकर उसने देखा, उदयादित्य बिछौने पर नहीं हैं। वे धरती पर बैठे खिड़की के ऊपर सिर रक्खे सो रहे हैं, यह देखकर विभा की छाती फट गई और उसने रोना चाहा। बड़ी कठिनाई से उसने अपनी रुलाई रोकी। वह बहुत धीरे-धीरे पाँव

की आहट बचाकर उदयादित्य के पास जा बैठी। देखते ही देखते दिन निकल आया। जङ्गल में चिड़ियाँ चहचहा उठीं। निकटवर्ती राजमार्ग में पथिक गाने लगे। दो-एक पहरेदार रात में जागने से क्लान्त होकर और सबेरा होते देखकर कोमल स्वर में गीत गाने लगे। भगवान् के मन्दिर में शङ्ख और घड़ी-घंटे बजने लगे। उदयादित्य एकाएक चौंककर जाग पड़े। विभा को देखते ही बोल उठे—विभा, यह क्या? इतने सबेरे क्यों आई है? घर के चारों तरफ़ देखकर बोले—अयँ, मैं कहाँ हूँ? थोड़ी ही देर में स्मरण हो आया कि वे कहाँ हैं! विभा की तरफ़ देखकर और साँस लेकर कहा—आह, विभा तू आई है? कल मैंने तुझे दिन भर में एक बार भी नहीं देखा। मैंने मन में समझ रक्खा था कि अब तुम लोगों को देखने न पाऊँगा।

विभा ने उदयादित्य के पास आकर और अपनी आँखों के आँसू पोंछकर कहा—भया, ज़मीन में नीचे क्यों बैठे हो? चारपाई पर वैसा ही बिछौना बिछा है जिसे देखकर मालूम होता है तुमने एक बार भी चारपाई पर पैर नहीं रक्खा। तो क्या दो दिन से धरती ही में आसन लगाये हो?

उदयादित्य ने धीरे-धीरे कहा—विभा, चारपाई पर बैठने से मुझे आकाश दिखाई नहीं देता। खिड़की की राह से आकाश की ओर देखता हूँ और जब पक्षियों को उड़ते देखता हूँ, तब मैं सोचता हूँ कि एक दिन मेरा भी पिंजड़ा टूटेगा; मैं भी इन पक्षियों की तरह इस अनन्त आकाश में स्वतन्त्र होकर जी खोल-कर विचरूँगा। इस खिड़की से जब अलग होता हूँ तब घर में चारों ओर अन्धकार दीख पड़ता है। उस समय भूल जाता हूँ कि मेरा किसी दिन छुटकारा होगा, मैं किसी दिन उद्धार पाऊँगा। भरोसा नहीं होता कि मेरी बेड़ी कटेगी और इस कारागार से अब मैं मुक्त होऊँगा। विभा, इस कारागार में जो यह दो हाथ

ज़मीन है, यहाँ आते ही मुझे जान पड़ता है कि मैं स्वभावतः स्वाधीन हूँ; कोई राजा-महाराजा मुझे क़ैद नहीं कर सकते। और इस घर के भीतर जो यह मुलायम बिछौना है वही मेरे लिए कारागार है।

आज विभा को एकाएक देखकर उदयादित्य के मन में अत्यन्त आनन्द हुआ। विभा के ऊपर जब उनकी दृष्टि पड़ा तब उन्हें जान पड़ा जैसे कारागार के सभी दरवाज़े खुल गये हों। उस दिन उन्होंने विभा को पास बैठाकर प्रसन्नता से इतनी बातें कीं कि क़ैद होने के पहले मालूम होता है कभी इतनी बातें न की होंगी। उदयादित्य के उस आनन्द का अनुभव विभा मन ही मन कर रही थी। विभा का हृदय पुलकित हो उठा। उसके शरीर में रोमाञ्च हो आया। वह उदयादित्य को आनन्द पहुँचा सकती है—यह बहुत दिनों के बाद एकाएक आज उसकी समझ में आया। हृदय में उसने बल पकड़ा। इतने दिन तक वह चारों ओर अन्धकार देख रही थी। किसी तरफ़ उसको किनारा नहीं मिलता था। वह नैराश्य के गुरुतर भार से एकदम झुक पड़ी थी। अपने ऊपर उसे रत्ती भर भी भरोसा न था। वह बराबर उदयादित्य की सेवा करती थी, किन्तु उसे यह विश्वास न था कि उदयादित्य को अपनी सेवा से सुखी कर सकूँगी। आज उसे कुछ कुछ विश्वास हुआ।

विभा भी एक तरह से कारागार ही में रहने लगी। खिड़की की राह से जब ही घर में सुबह की सफ़ेदी आती तभी कारागार का द्वार खुलता और विभा की विमल मूर्ति देख पड़ती। नौकरों को विभा कोई काम करने नहीं देती। सब काम वह अपने हाथों से करती थी, अपने हाथ से वह उदयादित्य को भोजन ला देती, और अपने हाथ से उनका बिछौना कर देती थी। उसने एक पालतू तोते का पिंजड़ा लाकर घर में लटका दिया है और प्रतिदिन सबेरे हवेली के बग़ीचे से फूल तोड़कर ला देती है। घर में एक

महाभारत की पोथी थी। उदयादित्य विभा को अपने पास बैठाकर वही पोथी सुनाते थे। किन्तु उदयादित्य के मन में एक भारी चिन्ता छाई हुई है। वे आप तो दुःख-समुद्र में जान-बूझकर डूबने बैठे हैं, ऐसे समय इस बेचारी नव-विवाहिता सुकुमारी विभा को हाथ खींचकर अपने साथ क्यों डुबो रहे हैं? वे प्रतिदिन अपने मन में ठानते हैं, विभा से कहेंगे कि बहन तू अपने घर जा। किन्तु विभा जब उषःकाल की ठण्डी हवा और स्वच्छ प्रकाश लेकर बड़े तड़के कारागार में आ पहुँचता है, जब अपना प्रेमपुलकित सुन्दर मुँह लेकर उनके पास बैठती है, जब वह अपनी दृष्टि में कितने ही आदर और कितनी ही अपेक्षाएँ भरकर उनके मुँह की ओर ध्यान से देखती है और बड़े ही मीठे स्वर में कितनी ही बातें पूछती है, तब उन्हें किसी तरह यह कहने का साहस नहीं होता कि विभा, तुम जाओ, अब तुम यहाँ न आना; मेरे लिए इतना कष्ट उठाने की कोई जरूरत नहीं। रोज़ ही वे अपने मन में कहा करते हैं कि कल कहूँगा, किन्तु वैसा कल कभी आता ही नहीं। आखिर एक दिन उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा की। विभा आई। उन्होंने कहा—विभा, तुम अब यहाँ न रहो, अपने घर जाओ। जब तक तुम न जाओगी, मेरे मन में शान्ति न होगी। प्रतिदिन सन्ध्या समय इस कारागार के अन्धकार में आकर मानों कोई मुझसे कहता है, विभा सङ्कट में पड़ना चाहती है। विभा, मेरे पास से तुम शीघ्र चल दो। मैं शनि ग्रह हूँ। मेरा दृष्टिपात होते ही चारों ओर से दुनिया भर की विपद् दौड़ आती है। तुम ससुराल जाओ। बीच-बीच में यदि तुम्हारा कुशल-समाचार मिलता रहेगा तो मैं उसी में अपने को सुखी मानूँगा।

विभा कुछ न बोली।

उदयादित्य सिर झुकाकर बड़ी देर तक विभा के मुँह का भाव देखने लगे। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। उदयादित्य

ने सोचा, जब तक मैं क़ैदख़ाने से रिहाई न पाऊँगा, विभा मुझे छोड़कर कदापि न जायगी। पर मैं नहीं जानता कि इस कारागार से कैसे मुक्त हो सकूँगा।

बाईसवाँ परिच्छेद

रामचन्द्र राय ने समझा कि विभा जो चन्द्रद्वीप नहीं आई, सो केवल प्रतापादित्य के दबाव और उदयादित्य की सलाह से। "विभा अपनी इच्छा से नहीं आई", इसका स्मरण होने ही से उनको अपने महत्त्व में बड़ा आघात लगता है। उन्होंने सोचा 'प्रतापादित्य मुझे अपमानित करना चाहते हैं' अतएव वे विभा को कभी मेरे यहाँ न आने देंगे। तो यह अपमान मैं उन्हीं के माथे क्यों न मढ़ दूँ ? मैं उन्हें ऐसा एक पत्र क्यों न लिखूँ कि मैंने तुम्हारी कन्या का परित्याग कर दिया अतएव उसे अब कभी चन्द्रद्वीप न भेजना। इस तरह सोचकर और पाँच आदमियों के साथ सलाह करके उन्होंने प्रतापादित्य के नाम इस मर्म का एक पत्र लिखा। प्रतापादित्य को ऐसा पत्र लिखना कुछ थोड़े साहस का काम नहीं है। रामचन्द्र राय को मन ही मन बड़ा भय हो रहा था किन्तु ढालू पहाड़ पर से बड़े वेग के साथ नीचे की ओर लुढ़कने पर जैसे हज़ार भय करते रहने पर भी बीच में कहीं अटकाव नहीं होता, वैसा ही एक भाव रामचन्द्र राय के मन में भी उत्पन्न हुआ था। वे एकाएक दुस्साहस के काम में प्रवृत्त हो गये। वे अन्त तक बिना पहुँचे बीच में कहीं ठहर नहीं सकते। उन्होंने राममोहन को बुलाकर कहा—यह पत्र यशोहर ले जाओ।

राममोहन ने हाथ जोड़कर कहा—नहीं महाराज, मैं वहाँ न जा सकूँगा। मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि अब यशोहर न जाऊँगा।

तथापि यदि आप दुलहिन साहबा को फिर ले आने की आज्ञा दें तो एक बार अपनी प्रतिज्ञा को भङ्ग कर सकता हूँ, अन्यथा नहीं।

राजा ने इस विषय में राममोहन से कुछ कहना उचित न समझकर वह पत्र वृद्ध नयनानन्द को दिया। वह उस पत्र को लेकर यशोहर की ओर चला।

वह पत्र लेकर गया तो, पर उसके मन में बड़ा ही भय हुआ। प्रतापादित्य के हाथ में यह पत्र पड़ने से न मालूम वे क्या कर बैठें। अतएव उसने बहुत सोच-विचारकर वह पत्र रानी के हाथ में देने का संकल्प किया। रानी का जी आजकल व्यग्र रहा करता है। एक तो विभा की चिन्ता उनके मन में दिन-रात बनी रहती है, दूसरे उदयादित्य के लिए वे और भी दुखी रहा करती हैं। संसार के विकट झमेले में पड़कर मानों उनका हृदय चूर-चूर हो गया है। अब वे बीच-बीच में रोती हैं। घर के काम-काज में अब उनका जी नहीं लगता। ऐसी अवस्था में उन्हें यह पत्र मिला। अब वे क्या करें, यह उनकी समझ में नहीं आता। वे इस विषय में विभा से कुछ कह नहीं सकतीं; क्योंकि यह हाल अगर उसे ज़ाहिर होगा तो वह और भी सूखकर काँटा हो जायगी। शायद उसके प्राण-पखेरू उड़ जायँ। और महाराज के कानों में इस चिट्ठी की बात पड़ने से न मालूम कौन सा अनर्थ उठ खड़ा हो। इसलिए ऐसे सङ्कट के समय किसी को कुछ न कहकर, किसी से कुछ सलाह न लेकर, रानी कैसे धैर्य धारण कर सकती हैं। चारों ओर सीमा-रहित सोच का समुद्र देखकर रानी रोते-रोते प्रतापादित्य के पास गईं। वहाँ जाकर उन्होंने कहा—महाराज, विभा का कुछ प्रबन्ध करना होगा।

प्रतापादित्य—क्यों? कौन सा प्रबन्ध? क्या हुआ है?

रानी—हुआ तो कुछ नहीं—तब विभा को किसी न किसी दिन तो ससुराल भेजना ही होगा।

प्रतापादित्य—यह तो मालूम है। पर इतने दिनों के बाद आज यह बात एकाएक कैसे याद आई ?

रानी ने डरकर कहा—आपके मन में तो यों ही सन्देह उत्पन्न होता रहता है। कुछ हुआ है, यह मैं नहीं कहती। अगर कुछ हो—

प्रतापादित्य ने रुष्ट होकर कहा—और होगा क्या ?

रानी—मान लो, अगर जामाता विभा को एकदम छोड़ दे तो ? रानी रुद्ध-कण्ठ होकर रोने लगी।

प्रतापादित्य अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। उनकी आँखों से मानों आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं।

महाराज की वह भयावनी मूर्ति देखकर रानी ने झट आँसू पोंछकर कहा—मेरे कहने का अभिप्राय यह नहीं कि जामाता ने ऐसा कुछ लिख भेजा है पर बात यही है कि अगर किसी दिन वे यह लिख भेजें तो ?

प्रतापादित्य ने कहा—तब उसका उचित उपाय करूँगा। अभी उसके लिए सोच करने का कौन अवसर है ?

रानी ने रोकर कहा—महाराज, मैं आपके पैरों पड़ती हूँ, मेरी एक बात रखिए। एक बार सोचकर देखिए कि विभा की क्या दशा होगी। मेरा हृदय पत्थर का है, इसी से अब तक खण्ड खण्ड होकर नहीं फटा है, नहीं तो जहाँ तक दुःख देने की सीमा है, आप दे चुके हैं। उदय को—मेरे कुँवर को—राजकुमार को साधारण अपराधी की तरह आपने कैद कर रक्खा है। वह मेरा बच्चा कभी किसी का कोई अपराध नहीं करता। किसी से कुछ लगाव नहीं रखता। अपराध क्या है सो भी नहीं समझता, राजकाज सिखाये भी नहीं सीखता। प्रजा का शासन करना नहीं जानता, इन सब बातों का उसे ज्ञान ही नहीं है। भगवान् ने उसे जैसा बना दिया है वैसा वह है। इसमें उसका क्या दोष ? यह कहकर रानी दुगने स्वर में रोने लगी।

प्रतापादित्य ने ज़रा रुखाई के साथ कहा—ये बातें तो हम कई बार सुन चुके हैं। जो बात कह रही थीं वही कहो।

रानी ने दोनों हाथों से अपना सिर पीटकर कहा—मेरा कपार फूट गया! और क्या कहूँ? कहने पर भी तो आप नहीं सुनते। महाराज, एक बार विभा के मुँह की ओर देखिए। वह किसी से कुछ कहती नहीं—वह केवल दिन-दिन सूखती जाती है, परछाहीं की तरह हो गई है। किन्तु वह किसी से कुछ कहती नहीं। उसका कुछ उपाय कीजिए।

प्रतापादित्य को अत्यन्त रुष्ट देखकर रानी चुपचाप वहाँ से लौट आई।

तेईसवाँ परिच्छेद

जब सीताराम ने देखा कि उदयादित्य क़ैद किये गये हैं तब वह मारे ग़ुस्से के आग-बबूला हो गया। पहले वह रुक्मिणी के घर आया। वहाँ उसके मुँह में जो जली-कटी बातें आईं उसे कह सुनाईं; यहाँ तक कि कई बार दौड़ दौड़कर वह उसे मारने चला और चिल्ला कर बोला—राक्षसी, हत्यारिन, तेरे घर को जला दूँगा, तेरे घर का नाम-निशान न रहने दूँगा, और युवराज को कारागार से छुड़ाऊँगा तब मेरा नाम सीताराम जानना। ले, मैं अभी रायगढ़ को चला। पहले रायगढ़ हो आता हूँ, इसके बाद तेरे काले मुँह को सान के ऊपर रगड़ूँगा। तेरे मुँह में कालिख और चूना पोतकर सारे शहर में घुमाऊँगा। फिर तुझे यहाँ से निकालकर तब यहाँ जल ग्रहण करूँगा!

रुक्मिणी कुछ देर तक स्थिर-दृष्टि से सीताराम के मुँह की ओर देखकर सब बातें सुनती रही। फिर उसने दाँत मसमसाये।

होंठ से होंठ दबाया। खूब ज़ोर से दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधी। उसकी भौंहों पर मानों मेघ छा गया। उसके विशाल नयनों की काली पुतलियों में बिजली चमकने लगी। कुछ देर तक उसका सारा शरीर सन्न सा हो गया। इसके बाद धीरे-धीरे उसका मोटा सा होंठ काँपने लगा। दोनों भौंहें ऊपर को तन गईं। सिर के बाल खुलकर बिखर गये। उसके हाथ-पैर थर-थर काँपने लगे, मानों एक पिशाचिनी का भयानक अभिशाप, मानों एक सर्वाङ्ग-पुष्ट काँपती हुई हिंसा, सीताराम के सिर पर गिरा चाहती है। सीताराम झट घर से बाहर हो गया। अब क्रमशः रुक्मिणी की मुट्ठी ढीली हो पड़ी। दोनों होंठ ज़रा अलग हुए। दाँत पर से दाँत हटे। टेढ़ी भौंहें जब कुछ सीधी हुईं तब वह सँभलकर बैठी और बोली—हाँ रे सीताराम, युवराज तुम्हारे ख़रीदे हुए हैं न? युवराज के ऊपर जो विपद् आ पड़ी है उसकी चोट बहुत बढ़कर तुम्हारे ही जी में कसकती है! मुँहझौंसा यह नहीं जानता कि वे युवराज मेरे ही हैं। मैं उन्हें जो चाहे नाच नचा सकती हूँ। मेरे युवराज को तू कैद से छुड़ाना चाहता है? उन्हें छुड़ा तो तुझे देखूँ। यों ही वह आप ही आप बक-झक करने लगी।

सीताराम उसी दिन रायगढ़ चला गया।

पिछले पहर दिन में वसन्तराय अपने कोठे के बरामदे में बैठे थे। दो-चार मुसाहब पास बैठे थे। वसन्तराय के हाथ में उनका पुराना सङ्गी वह सितार अब नहीं था। वृद्ध वसन्तराय उस अस्त होते हुए सूर्य की ओर देखकर अपने मन में गुनगुनाकर कुछ गा रहे थे—

अकेला ही अब तो मैं रहता॥

जो कुछ था सब गया, अकेला ही सब कुछ हूँ सहता,
जो मेरे थे हुए सभी चुप, नहीं कोई कुछ कहता।
कौन कहाँ? मैं किसे पुकारूँ—पता नहीं कुछ चलता,
रहने दिया नहीं कुछ भी अब, यही हृदय में खलता॥

इसी समय ख़ाँ साहब ने आकर एक लम्बा सलाम किया। ख़ाँ साहब को देखकर वसन्तराय ने प्रसन्न होकर कहा—ख़ाँ साहब, आओ, आओ! ख़ुद उसके पास जाकर पूछा—ख़ाँ साहब, तुम्हारा मुँह ऐसा उदास क्यों देख रहा हूँ? तबीयत तो अच्छी है?

ख़ाँ साहब—महाराज, तबीयत का हाल न पूछिए। आपको उदास देखकर अब मेरे मन में सुख नहीं है। एक शेर का मतलब है—"रात कहती है मैं कुछ नहीं हूँ, मैं जिस चन्द्रमा को माथे पर चढ़ाये हुई हूँ वही सब कुछ है। उसी के साथ मिलकर मैं हँसती और उसके म्लान होने के साथ म्लान होती हूँ!" महाराज, मेरे भी अब आपके सिवा दूसरा कौन है? आपके प्रसन्न न रहते मेरी प्रसन्नता कैसी? आपकी उदासीनता में फिर हमें सुख कहाँ?

वसन्तराय ने व्यग्र होकर कहा—ख़ाँ साहब, यह क्या? मैं तो अच्छा हूँ। मुझे तो कोई क्लेश नहीं हुआ है। मैं अपने को देखकर आप ही प्रसन्न रहता हूँ—मैं अपने आनन्द में आप ही मग्न रहता हूँ। ख़ाँ साहब, तुमने मेरी उदासीनता क्या देखी?

ख़ाँ साहब—महाराज, अब आपका उस तरह गाना-बजाना नहीं होता।

वसन्तराय ज़रा ठहरकर बोले—मेरा गाना सुनोगे? अच्छा सुनो—

"अकेला ही अब तो मैं रहता।"

ख़ाँ साहब ने कहा—अब आपका वह सितार कहाँ गया? न मालूम वह कहाँ है?

वसन्तराय ने मुसकुराकर कहा—सितार अब नहीं है, यह न समझो। सितार है, किन्तु उसके सब तार टूट गये हैं, इसी से उसे रख छोड़ा है। यह कहकर वे आम के बग़ीचे की ओर देखकर माथे पर हाथ फेरने लगे।

कुछ देर के बाद वसन्तराय बोले—ख़ाँ साहब, तुम कुछ गाओ। कोई एक गीत गाओ, ज़रूर गाओ।

ख़ाँ साहब एक बेतुकी क़व्वाली गाने लगे।

देखते ही देखते वसन्तराय मस्त हो उठे—बैठे न रह सके। उठकर खड़े हुए, ख़ाँ साहब के साथ मिलकर गाने और ताल पर ताल देने लगे। गाते-गाते सूर्यास्त हो गया, अँधेरा हो आया। गीत गाते हुए चरवाहे अपने-अपने घर आने लगे। इसी समय 'महाराज की जय हो' कहकर सीताराम ने वसन्तराय को प्रणाम किया। वसन्तराय ने एकदम चकित होकर तुरन्त गाना बन्द किया और झट उसके पास जाकर कहा—कहो सीताराम, अच्छे तो हो? उदयादित्य कैसे हैं? विभा कहाँ है? सब लोग कुशल से तो हैं?

ख़ाँ साहब चले गये। सीताराम ने कहा—"महाराज, मैं एक एक कर सब वृत्तान्त कह सुनाता हूँ।" सब बातें कहते-कहते युवराज के क़ैद होने की बात कही। पर जिस कारण उदयादित्य क़ैद किये गये थे वह कारण उसने साफ़ साफ़ नहीं बतलाया।

वसन्तराय के माथे पर मानों दुःख का आकाश टूट पड़ा। उन्होंने सीताराम का हाथ ख़ूब ज़ोर से पकड़ा। उनकी भौंहें तन गईं। आँखों का विस्तार कुछ बढ़ गया। होंठ खुल गये। वे स्थिर दृष्टि से सीताराम के मुँह की ओर देखकर बोले—अयँ!

सीताराम ने कहा—हाँ महाराज! कुछ देर तक चुप रहकर वसन्तराय ने कहा—सीताराम!

सीताराम—महाराज!

वसन्तराय—क़ैद किये जाने पर उदयादित्य अभी कहाँ हैं?

सीताराम—जी, वे अभी कारागार में हैं।

वसन्तराय अपने माथे पर हाथ फेरने लगे। उदयादित्य क़ैदख़ाने में हैं यह बात उनके जी में अच्छी तरह नहीं धँसती। कुछ कल्पना करते भी नहीं बनता। कुछ देर के बाद फिर सीताराम का हाथ पकड़कर कहा—सीताराम!

सीताराम—हाँ महाराज!

वसन्तराय—कैद होने पर उदयादित्य क्या करते हैं ?

सीताराम—और क्या करेंगे ! कारागार में ही हैं।

वसन्तराय—क्या उनको सबने बन्द कर रक्खा है ?

सीताराम—जी हाँ।

वसन्तराय—क्या उन्हें कोई एक बार भी बाहर होने नहीं देता ?

सीताराम—जी नहीं।

वसन्तराय—वे अकेले ही कैदखाने में बैठे रहते हैं ?

वसन्तराय ये बातें किसी व्यक्ति-विशेष से नहीं पूछ रहे थे। आप ही आप अचम्भे में आकर बोल रहे थे। सीताराम ने यह न समझकर फिर कहा—हाँ महाराज।

वसन्तराय ने कहा—भाई, तुम मेरे पास आकर बैठो। तुमको शायद किसी ने पहचाना नहीं।

—

चौबीसवाँ परिच्छेद

यशोहर पहुँचकर वसन्तराय ने प्रतापादित्य के पास जाकर विनय-पूर्वक कहा—प्रताप, उदय को इतना कष्ट क्यों देते हो ? उसने तुम्हारा क्या अपराध किया है ? उस पर अगर तुम्हारा प्रेम नहीं है, और वह यदि पग-पग में तुम्हारा अपराध करता है तो उसे इस बूढ़े के सिपुर्द कर दो। मैं उसे अपने यहाँ ले जाता हूँ। मैं उसे ऐसी जगह रक्खूँगा कि फिर तुम कभी उसे न देखोगे। वह बराबर मेरे ही पास रहेगा।

प्रतापादित्य बड़ी देर तक धीरज धरकर चुपचाप वसन्तराय की बातें सुनते रहे, आखिर बोले—चाचाजी, मैंने जो कुछ किया है बहुत सोच-समझकर किया है। इस विषय में आप मेरी अपेक्षा

ज़रूर ही कम जानते हैं—उस पर आप हुकूमत चलाने आये हैं। आपकी ये वाहियात बातें मैं ग्राह्य नहीं कर सकता।

तब वसन्तराय धीरे-धीरे प्रतापादित्य के पास आकर बैठे और उनका हाथ पकड़कर बोले—प्रताप, क्या तुम अब उन सब बातों को भूल गये? तुमको जो मैंने बचपन में गोद खिलाया, तुमको जो पाल-पोसकर बड़ा किया, वे बातें क्या अब याद नहीं आतीं? गोलोकवासी भाई साहब जिस दिन तुम्हें मेरे हाथ में सौंप गये उस दिन से क्या मैंने तुमको कोई कष्ट होने दिया? जब तुम बिलकुल असहाय अवस्था में मेरे पास थे, क्या एक दिन भी तुमने अपने को पितृहीन समझा? प्रताप, कहो तो, मैंने तुम्हारा क्या क़सूर किया है जिसमें मेरे इस बुढ़ापे में तुमने मुझे इतना कष्ट दिया है? मैं यह नहीं कहता हूँ कि मैंने तुम्हारा पालन किया था इससे तुम मेरे ऋणी हो—क्योंकि तुमको पालकर और बड़ा करके तो मैंने अपने भाई के स्नेह-ऋण का परिशोध किया है। अतएव मैं अपने को फलभागी स्थिर करके तुमसे कुछ लेना नहीं चाहता और कभी कुछ लिया भी नहीं। मैं तुम्हारे हाथ से सिर्फ़ भीख चाहता हूँ। क्या वह भी न दोगे?

वसन्तराय की आँखों से आँसू गिरने लगे। प्रतापादित्य पाषाणमूर्ति की तरह बैठे रहे।

वसन्तराय ने फिर कहा—क्या तुम मेरी बात पर कुछ विचार न करोगे? क्या मेरी भिक्षा की लाज न रक्खोगे? प्रताप, क्या मेरी बात का कुछ जवाब भी न दोगे? अच्छा, मेरी और एक छोटी सी प्रार्थना है। मैं उदय को एक बार देखना चाहता हूँ। मुझको उस कारागार में प्रवेश करते कोई रोके नहीं—यही आज्ञा दो।

प्रतापादित्य ने यह आज्ञा भी न दी। इसके विरुद्ध उदयादित्य के ऊपर इतना अधिक स्नेह प्रकट करने से प्रतापादित्य मन ही मन बहुत चिढ़ गये। लोग उनको अपराधी समझते हैं, यह बात जितना

ही उनके मन में उदित होती थी उतना ही वे और अधिक क्रोध का भाव धारण करते थे।

वसन्तराय बड़ी उदासी के साथ लौटकर हवेली में गये। उनका वैसा मुँह देखकर विभा को बड़ा दुःख हुआ। विभा ने वसन्तराय का हाथ पकड़कर कहा—दादाजी, मेरे कमरे में चलिए। वसन्तराय ने चुपचाप विभा के साथ उस कमरे में प्रवेश किया। विभा ने उन्हें बड़े आदर से हाथी-दाँत की चौकी पर बैठाया और उनके आगे पान, इलायची और इतर लाकर रक्खा। आप उनके पास से ज़रा हटकर नीचे बैठी। वसन्तराय ने कहा—अब तुम्हारे हाथ का पान खाने लायक़ मेरा मुँह कहाँ! जिस दिन पान खाने योग्य मेरा मुँह था उस दिन तुम पान लगाकर देने योग्य न थीं। इस पोपले मुँह में अब पान की शोभा ही क्या? इस दन्तरहित मुँह में रखकर इन्हें क्यों बेइज्ज़त करूँ?

वसन्तराय ने देखा, विभा का मुँह म्लान सा हो गया है। उसकी आँखों में आँसू भर आये हैं। वसन्तराय ने तुरन्त कहा—क्यों विभा, थोड़ी देर के लिए तुम अपने दाँत मुझे उधार दोगी? उन दाँतों से पान चाबकर फिर तुम्हें वापस कर दूँगा। यह कहकर उन्होंने दो बीड़े पान मुँह में रख लिये।

विभा हंस उठी। कहने लगी—तुम्हारे बाल भी बिलकुल पक गये। दादाजी, थोड़े दिन के लिए क्यों, तुम हमेशा के लिए मेरे दाँत और सिर के बाल ले लो।

वसन्तराय को उसकी अवस्था पर खेद हो आया।

इतने में एक लौंडी ने आकर वसन्तराय से कहा—रानी आपको एक बार प्रणाम करना चाहती हैं।

वसन्तराय रानी के घर गये और विभा उदयादित्य के पास कैदख़ाने में गई।

रानी ने वसन्तराय को प्रणाम किया। वसन्तराय ने आशीर्वाद दिया—चिरञ्जीविनी हो।

रानी ने कहा—चाचाजी, ऐसा आशीर्वाद न दीजिए। अब मेरी मृत्यु होने ही में कुशल है।

वसन्तराय ने अकचकाकर कहा—राम-राम! यह बात भी कोई मुँह में लाता है?

रानी—चाचाजी, अब और क्या करूँगी? मेरे घर पर मानों सनीचर की दृष्टि पड़ी है।

वसन्तराय बहुत बेचैन हो गये।

रानी—विभा का मुँह देखकर मुझे अब खाना-पीना कुछ नहीं सुहाता। पूछने पर वह कुछ बोलती नहीं, केवल दिन-दिन उसका शरीर सूखा जाता है। उसका मैं क्या उपाय करूँ, कुछ मेरी समझ में नहीं आता।

वसन्तराय बड़े ही व्याकुल हुए। "यह देखिए एक सत्यानाशी चिट्ठी आई है" कहकर रानी ने एक चिट्ठी वसन्तराय को दी।

वसन्तराय चिट्ठी पढ़ने लगे। इधर रानी रो-रोकर कहने लगी—मेरे भाग्य में कौन सुख है? मेरा बेटा उदय कुछ नहीं जानता। उसे महाराज समझते हैं कि मानों वह राजकुमार है ही नहीं; किन्तु मैंने तो उसे गर्भ में धारण किया था, वह तो मेरी सन्तान है। मैं नहीं जानती, मेरा बेटा वहाँ कैसे रहता है? वे उसका मुँह एक बार भी तो देखने नहीं देते।

रानी आजकल किसी तरह की बातें क्यों न करें पर उन बातों में किसी न किसी जगह उदयादित्य का ज़िक्र निकल ही पड़ता है। मानों यह कष्ट उनके जी में दिन-रात लगा रहता है।

चिट्ठी पढ़कर वसन्तराय एकदम अवाक् हो गये। वे दम साधकर माथे पर हाथ फेरने लगे। कुछ देर के बाद उन्होंने रानी से पूछा—यह पत्र और किसी को तो नहीं देखने दिया?

रानी—महाराज यदि इस चिट्ठी की बात सुनते तो न जाने क्या होता! विभा भी यह जानकर क्या जीना पसन्द करेगी?

वसन्तराय—बहुत अच्छा काम किया। बहूजी, यह चिट्ठी और किसी दूसरे को न दिखलाना। तुम विभा को जल्द ससुराल भेज दो। मान-अपमान की बात न सोचो।

रानी—मैंने भी यही सोचा है। मैं मान-महत्त्व लेकर क्या करूँगी? मेरी विभा सुख से रहे, यही मेरे लिए सब कुछ मान-मर्य्यादा है। केवल भय इसी बात का है कि कहीं पीछे वे लोग विभा को दुःख न दें।

वसन्तराय—हाँ, वे लोग विभा को दुःख देंगे! नहीं, विभा क्या दुःख की पात्र है? वह जहाँ जायगी वहीं उसका आदर होगा। ऐसी लक्ष्मी—ऐसी भव्यमूर्ति—और कहीं देखने में नहीं आती। रामचन्द्र राय ने तुम लोगों के ऊपर रोष करके ही यह चिट्ठी लिखी है। विभा को भेज देने ही से उनका क्रोध ठंडा पड़ जायगा।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

सन्ध्या का समय है। वसन्तराय अकेले राजभवन के बाहर बैठे हैं। ऐसे समय सीताराम ने आकर उनको प्रणाम किया।

वसन्तराय ने पूछा—कहो सीताराम, क्या हाल है?

सीताराम—यह पीछे कहूँगा, अभी आप मेरे साथ चलें।

वसन्तराय ने कहा—क्यों सीताराम, कहाँ?

सीताराम ने चुपके से उनके कानों में कुछ कहा। वसन्तराय ने अचम्भे के साथ कहा—क्या सच कहते हो?

सीताराम—जी हाँ।

वसन्तराय—एक बार विभा से भेट कर आऊँ ?

सीताराम—जी नहीं, समय नहीं है।

वसन्तराय—कहाँ जाना होगा ?

सीताराम—मेरे साथ आइए, मैं ले चलता हूँ।

वसन्तराय उठकर खड़े हुए और बोले—एक बार विभा को क्यों न देख आऊँ ?

सीताराम—नहीं महाराज! देरी होने से बनी-बनाई बात बिगड़ जायगी।

वसन्तराय ने बड़ी जल्दी में कहा—तो विभा से मिलने का प्रयोजन नहीं। दोनों रवाना हुए।

फिर कुछ दूर जाकर वसन्तराय ने कहा—ज़रा देरी होने से क्या काम न बनेगा ?

सीताराम—नहीं महाराज, देरी होने से हम लोग विपद् में पड़ेंगे।

"जय माँ दुर्ग" कहकर वसन्तराय राजभवन से बाहर हुए।

वसन्तराय के आने का हाल उदयादित्य को मालूम न हुआ। विभा ने उनके आने की बात उनसे नहीं कही; क्योंकि उन दोनों में जब भेट होने की कोई सम्भावना न थी तब उनके मन में इस संवाद के सुनने से कष्ट ही होता। साँझ हो जाने पर विभा उदयादित्य से आज्ञा लेकर कारागार से चली गई। विभा आज कुछ देरी करके आई थी और अन्य दिन की अपेक्षा कुछ सबेरे ही चली गई। आज विभा को उदयादित्य ने कुछ अधिक उदास देखा था। वे उसी का तर्क-वितर्क मन में करने लगे। विभा धीरे धीरे मुझसे विरक्त तो नहीं हो रही है ? इस आनन्द-शून्य कारागार के भीतर एक अभागिनी मलिन मूर्ति की सेवा करना क्या अब उसे पसन्द नहीं ? वह मुझे अपने सुख का कण्टक तो नहीं समझ रही है ? आज देर करके आई है, कल शायद और

भी देरी करके आवे। फिर तो मुझे शायद सारा दिन बैठकर विभा के आने की प्रतीक्षा करनी होगी। विभा कब आवेगी, यही चिन्ता करते-करते सुबह से दोपहर होगा—साँझ होगी—रात होगी, विभा न आवेगी!—इसके बाद शायद विभा कभी यहाँ आवेगी ही नहीं।

उदयादित्य के मन में जितना ही इन बातों का सोच होने लगा उतना ही वे अधीर होने लगे। वे अपनी कल्पना के राज्य में चारों ओर भयानक दृश्य देखने लगे।

इसी समय बाहर एकाएक लोग चिल्लाने लगे—आग लगी; आग लगी। भारी हल्ला मच गया। उदयादित्य का हृदय काँप उठा। बाहर सैकड़ों मनुष्य एक स्वर से पुकारने लगे। कोठे की छत पर सैकड़ों लोगों के दौड़ने का शब्द सुनाई देने लगा। उदयादित्य ने समझा कि ड्योढ़ी के आसपास कहीं आग लगी है। बड़ी देर तक शोर-गुल होते रहने के कारण उनका मन घबरा गया। इतने में एकाएक बड़ी शीघ्रता से उनके कारागार का द्वार खुल गया। साथ ही एक आदमी भीतर घुसा। उन्होंने चौंककर पूछा—कौन है?

उसने कहा—मैं सीताराम हूँ, आप बाहर चलें।

उदयादित्य ने पूछा—क्यों?

सीताराम—युवराज साहब, कारागार में आग लगी है, जल्द यहाँ से भाग चलें। सीताराम उनका हाथ खींचकर बड़े वेग से क़ैदख़ाने से बाहर ले गया।

कितने ही दिनों के बाद उदयादित्य आज खुली जगह में आये। उन्होंने माथे के ऊपर एकाएक बृहत् आकाश-मण्डल देखा। मानों ठण्डा हवा अपनी छाती पसारकर उनका आलिङ्गन करने लगी। चारों तरफ़ से जो उनकी दृष्टि का अवरोध था सो खुल गया। उस अँधेरी रात में, आकाशवर्ती असंख्य तारों के नीचे, लम्बे-चौड़े

मैदान में मुलायम घास के ऊपर खड़े होकर उन्होंने अपने मन में एक असीम अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव किया। वे उस आनन्द में कुछ देर निमग्न रहे, तदनन्तर उन्होंने पूछा—"कहो सीताराम, अब क्या करना होगा? कहाँ जाना होगा?" वे बहुत दिनों से एक छोटी सी जगह में बन्द थे। इसी से उन्होंने इस बड़े मैदान में आकर सीताराम से पूछा—"कहाँ जाना होगा?" सीताराम ने कहा—मेरे साथ सीधे आइए।

——

छब्बीसवाँ परिच्छेद

सीताराम युवराज को अपने साथ नहर के पास ले गया। वहाँ एक नाव बँधी थी। उसी नाव के सामने जाकर दोनों खड़े हुए। उन दोनों को देखकर नाव में से झट एक व्यक्ति बाहर आकर बोला—मेरे उदय आ गये? उदयादित्य एकदम चौंक उठे। यह तो वही परिचित स्वर है। संसार में जितने सुख हैं, जितने आनन्द हैं, यह स्वर उन्हीं के साथ मिला हुआ है। कभी-कभी वे क़ैद-ख़ाने में, गहरी रात में—जब उनकी आँखें लग जाती थीं तब—स्वप्नावस्था में वंशीध्वनि के सदृश जो मधुर स्वर सुनकर चौंक उठते थे, यह वही स्वर है! उनका आश्चर्य दूर होते न होते वसन्त-राय ने आकर उन्हें गले लगा लिया। दोनों की आँखों में आँसू उमड़ आये। दोनों उसी जगह दूब पर बैठ गये। बड़ी देर के बाद उदयादित्य ने कहा—दादाजी! वसन्तराय ने कहा—हाँ बेटा! और कोई बात न हुई। फिर बहुत देर के बाद उदयादित्य ने चारों तरफ़ देखकर, आकाश की ओर देखकर और वसन्तराय के मुँह की ओर देखकर गद्गद स्वर में कहा—दादाजी, आज मुझे स्वाधी-

नता मिली है, आपके दर्शन हुए हैं, मुझे अब और क्या चाहिए ? न मालूम यह सुख की घड़ी कब तक रहेगी ?

कुछ देर के बाद सीताराम ने हाथ जोड़कर कहा—युवराज, नाव पर सवार हों।

युवराज ने चकित होकर कहा—क्यों ? नाव पर किस लिए ?

सीताराम—नहीं तो कुछ देर में पहरेदार लोग यहाँ आ पहुँचेंगे।

उदयादित्य ने अचम्भे के साथ वसन्तराय से पूछा—दादाजी, क्या हम लोग भागे जा रहे हैं ?

वसन्तराय ने उदयादित्य का हाथ पकड़कर कहा—हाँ, भाई, मैं तुम्हें चुराये लिये जा रहा हूँ। यह पाषाण-हृदय का देश है। यहाँ के लोग तुम पर प्रेम नहीं रखते। हिरन के बच्चे की तरह तुम इस व्याध के राज्य में रहते हो। मैं तुमको अपने हृदय के भीतर छिपा रक्खूँगा। वहाँ तुम सुख से रहोगे। यह कहकर उन्होंने उदयादित्य को अपनी छाती के पास खींच लिया। मानों वे उन्हें कठोर संसार से निकालकर कोमल स्नेह के राज्य में छिपा रखना चाहते हैं।

उदयादित्य ने बड़ी देर तक सोचकर कहा—नहीं दादाजी, मैं भागकर न जाऊँगा।

वसन्तराय—क्यों, क्या इस वृद्ध को अब भूल गये ?

उदयादित्य—मैं जाता हूँ। एक बार पिता के पैरों पर गिरकर रोऊँगा और उनसे प्रार्थना करके कहूँगा। शायद वे रायगढ़ जाने की आज्ञा दे दें।

वसन्तराय घबरा उठे और बोले—सुनो, सुनो, वहाँ मत जाओ। जाने से कुछ फल न होगा।

उदयादित्य ने ठंडा साँस लेकर कहा—तब मैं फिर कारागार ही में लौटा जाता हूँ।

वसन्तराय ने उनका हाथ जोर से पकड़कर कहा—कैसे जाते हो, जाओ तो देखूँ। मैं नहीं जाने दूँगा।

उदयादित्य ने कहा—दादाजी, इस अभागे को लेकर तुम क्यों अपने ऊपर आफ़त बुला रहे हो! मैं जहाँ रहता हूँ वहाँ क्या तिलमात्र की शान्ति की सम्भावना रहती है?

वसन्तराय—भाई, तुम्हारे कारण विभा भी तो एक प्रकार से कारागार का दुःख झेल रही है। वह अपनी इस नई उम्र में क्या अपने जीवन के सारे सुखों को त्याग करके ही रहेगी? वह अपनी उम्र को क्या यों ही बिता डालेगी?

उदयादित्य ने तुरन्त ही कहा—हाँ, तब चलो दादाजी। सीताराम की ओर देखकर उन्होंने कहा—सीताराम, मैं राजभवन को तीन पत्र भेजना चाहता हूँ।

सीताराम ने कहा—नाव में काग़ज़-क़लम सब मौजूद है। मैं अभी ले आता हूँ। जो कुछ लिखना हो जल्दी लिखिए। अब समय नहीं है।

उदयादित्य ने पिता के निकट क्षमा माँगी। माँ को लिखा—माँ, मुझे गर्भ में धारण करके केवल तुमने दुःख ही दुःख उठाया, मैं कभी कोई सुख तुम्हें न दे सका। तुम कुछ सोच न करो, मैं दादाजी के पास जा रहा हूँ। वहाँ मैं सुख से रहूँगा। तुम मेरे लिए कोई चिन्ता न करना। विभा को लिखा—सौभाग्यवती विभा, तुमको अधिक क्या लिखूँ। तुम जन्म-जन्म सुख पाओ। अपने स्वामी के घर जाकर सुख का संसार बसाओ और मन से सब सोच-दुःख भुला दो।

सीताराम ने उन तीनों चिट्ठियों को एक मल्लाह के मारफ़त भिजवा दिया। सब नाव पर सवार हो रहे थे कि उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति उन लोगों के पास दौड़ा आ रहा है। सीताराम चौंककर बोल उठा—अरे! यह तो वही डाकिनी आ रही है। इतने

ही में रुक्मिणी उनके समीप आ पहुँची। उसके बाल बिखरे हुए थे। उसके अञ्चल का वस्त्र छाती से अलग हट गया था। प्रज्वलित अङ्गारे की तरह उसकी आँखें आग उगल रही हैं। बार-बार उसकी इच्छा रोकी गई थी। पूरे तौर से बदला न ले सकने की यन्त्रणा से व्याकुल होकर वह जिसे अपने सामने पाती है, मानों उसी को टुकड़े-टुकड़े करके काट खाना चाहती है और इसी से अपनी क्रोधाग्नि को ठण्डा करना चाहती है। उसने आते ही बाघिन की तरह उछलकर उदयादित्य पर आक्रमण करना चाहा। सीताराम बीच में आकर खड़ा हो गया। तब वह चिल्लाकर सीताराम के ऊपर कूद पड़ी और दोनों हाथों से ख़ूब ज़ोर से उसे पकड़कर दबाने लगी। सीताराम एकाएक चिल्ला उठा। नाव पर जितने माँझी थे सब दौड़ आये। उन लोगों ने बलपूर्वक रुक्मिणी को छुड़ाकर अलग किया। आत्मघाती बिच्छू जैसे अपने सर्वाङ्ग में आप ही डङ्क मारता है वैसे ही वह हतज्ञान होकर अपने नखों से अपनी छाती और सिर के बाल नोचकर और ख़ूब ज़ोर से चिल्लाकर बोली—कुछ न हुआ, कुछ न हुआ। यहाँ मैं मरी, इस स्त्री-हत्या का पाप तुम लोगों को होगा। उस अँधेरी रात में यह अभिशाप दूर तक चारों ओर ध्वनित हो उठा। उसी समय रुक्मिणी बड़े वेग से पानी में कूद पड़ी। बरसात के कारण नहर में पानी ख़ूब बढ़ा था। वह उस पानी में कहाँ चली गई, इसका पता न रहा। सीताराम के कन्धे से ख़ून गिर रहा था। उसने चादर भिगोकर कन्धे पर पट्टी बाँधी। फिर उसने उदयादित्य के पास जाकर देखा, उनके माथे पर पसीने की बूँदें छाई हैं और वे प्रायः अचेत हो गये हैं। वसन्तराय भी दिग्भ्रान्त की तरह हक्का-बक्का से हो रहे हैं। मल्लाहों ने उन दोनों को नाव पर सवार कर तुरन्त नाव खोल दी। सीताराम ने डरकर कहा—यात्रा के समय यह अशुभ कहाँ से आ खड़ा हुआ!

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

जब उदयादित्य की नाव नहर से निकलकर नदी में जा पहुँची तब सीताराम नाव से उतरकर शहर में लौट आया। वह लौटते समय युवराज के हाथ की तलवार लेता आया।

सीताराम ने युवराज की तीनों चिट्ठियाँ देकर एक आदमी को पहले ही ड्योढ़ी पर रवाना कर दिया था; किन्तु चिट्ठी ले जानेवाले को एकान्त में अच्छी तरह समझा दिया था कि चिट्ठी किसी को न देना। सीताराम ने ड्योढ़ी पर पहुँचकर उस आदमी से वे पत्र ले लिये। रानी और विभा की चिट्ठी रख छोड़ी और जो बची उसे फाड़कर आग में जला दिया।

उस समय आग और भी भयङ्कर रूप से चारों ओर फैलती जा रही थी। इसके बाद देखा गया कि उदयादित्य के सूने कारागार में आग लगी है। आग ने एक-एक खिड़की, दरवाज़ा, चौखट, किवाड़, और कड़ी आदि को भस्म कर दिया। उस कारागार में भी किसी तरह आग पहुँच सकती है, यह किसी को स्वप्न में भी विश्वास न था। इसी से उस तरफ़ किसी का ध्यान भी न था। सीताराम ने घूम-फिरकर देखा, आग अच्छी तरह कारागार को जलाने लगी है। सीताराम ने एक मुरदे की खोपड़ी, कुछ हड्डियाँ और उदयादित्य की तलवार किसी तरह कारागार में फेंक दी।

दूसरी ओर जो लोग पहरेदारों की कोठरियों की आग बुझा रहे थे, उन लोगों में से एक आदमी दौड़ता हुआ आकर बोला—अरे दादा, युवराज के घर में आग धधक रही है! पहरेदारों के होश उड़ गये। चोरों तो बदन में ख़ून नहीं। दयालसिंह के सिर में चक्कर आने लगा। उसके हाथ से घड़ा गिर गया। वह अपनी सब चीज़ें धरती में फेंककर उस तरफ़ दौड़ा। इसी समय एक दूसरे आदमी ने आकर कहा—कैदख़ाने के भीतर युवराज चिल्ला रहे हैं!

उसकी बात ख़तम होते न होते सीताराम ने आकर कहा—अरे, तुम लोग जल्दी चलो, युवराज के घर की छत टूटकर नीचे गिर पड़ी है, अब तो उनकी कुछ आहट भी नहीं मिलती। सभी युवराज के कारागार की तरफ़ दौड़े। वहाँ जाकर देखा, घर की छत टूटकर, नीचे गिर पड़ी है। चारों तरफ़ आग धधक रही है। घर में किसी तरफ़ से घुसने का रास्ता नहीं। तब वे लोग वहाँ खड़े होकर आपस में एक दूसरे पर दोषारोपण करने लगे। किसकी ग़फ़लत से यह दुर्घटना हुई, इसी का सब लोग निश्चय करने लगे। बात ही बात में झगड़ा उठ खड़ा हुआ। आपस में सब झगड़ने लगे, एक दूसरे को गाली-गुप्ता देने लगे। विवाद यहाँ तक बढ़ा कि मार-पीट होने की नौबत आ गई।

सीताराम ने सोचा कि घर में आग लगने से युवराज जलकर मर गये हैं—यह ख़बर फैलाकर मैं अभी कुछ दिन यहाँ निश्चिन्त होकर रह सकूँगा। जब उसने देखा कि घर में चारों तरफ़ ख़ूब अच्छी तरह आग पसर गई है तब वह माथे में चादर लपेटकर प्रसन्न मन से अपने घर की ओर चला। कुछ दूर जाने पर उसे एक बात सूझी। उसने सोचा कि यशोहर से तो परिवार-सहित भागना ही होगा। अभी बिना परिश्रम के कुछ रुपये हाथ लगते हैं। उन्हें क्यों छोड़ें? उन्हें ले ही लेना चाहिए। मङ्गला राक्षसी तो डूबकर मर ही चुकी है। भारी आफ़त सिर से टली। एक बार उसके घर होता जाऊँ, उसके पास बेशुमार रुपये थे। इस संसार में उसके और कोई नहीं है। वह रुपया अगर मैं नहीं लेता हूँ, तो ज़रूर कोई दूसरा लेगा। दूसरा क्यों ले? एक बार कोशिश करके देखता हूँ।

सीताराम ने रुक्मिणी के घर के पास पहुँचकर देखा, द्वार खुला है। प्रसन्न चित्त से घर के भीतर घुसकर उसने एक बार चारों ओर ध्यानपूर्वक देखा। घर में अँधेरा क्या अँधेरा था। कहीं कुछ

दिखाई नहीं देता था। एक बार वह चारों तरफ़ टटोलकर देखने लगा। वह एक सन्दूक़ से ठोकर खाकर गिर पड़ा। दो-एक बार उसके माथे में दीवाल की ठोकर लगी। सीताराम का सारा शरीर काँपने लगा। उसके मन में हुआ, जैसे कोई घर में है। मालूम होता है, जैसे कोई साँस ले रहा है। उसने धीरे धीरे उसके पास-वाले दूसरे घर में जाकर देखा कि रुक्मिणी के सोने के कमरे से कुछ कुछ रोशनी आ रही थी। चिराग़ अभी तक जल रहा है, यह समझकर सीताराम के मन में बड़ी ख़ुशी हुई। वह लपककर उस घर की ओर गया। अरे! यह कौन है, घर में कौन बैठा है? एक स्त्री चुपचाप बैठी है और थर-थर काँप रही है। उसके पहनने का कपड़ा बिलकुल भीगा है जो कमर से नीचे शरीर में लिपटा हुआ है। उसके खुले हुए बालों से पानी टपक रहा है। पहले तो उसे देखकर एकाएक सीताराम ने समझा कि मङ्गला प्रेत-रूप में यहाँ आकर बैठी है। फिर कुछ हिम्मत करके परिहास के स्वर में वह बोला—अरी, तुम कहाँ से लौट आईं? क्या तुम्हारा मरण नहीं हुआ? यमराज को दग़ा देकर लौट आईं! रुक्मिणी कुछ देर भयानक दृष्टि से सीताराम के मुँह की ओर देखती रही। इससे सीताराम का कलेजा मारे डर के धड़कने लगा।

आख़िर रुक्मिणी एकाएक बोल उठी—तुम लोगों का अभी तक सर्वनाश हुआ ही नहीं, मैं अभी मरूँगी क्योंकर? वह उठकर खड़ी हुई और हाथ चमकाकर बोली, मैं यमपुरी से लौट आई हूँ। पहले तुमको और युवराज को चूल्हे में जलाऊँगी। उस चूल्हे में से दो मुट्ठी राख लेकर देह में मलकर देह की जलन ठंडी करूँगी। इसके बाद यम का मनोरथ पूरा करूँगी। जब तक मैं अपना काम पूरा न करूँगी, तब तक मेरे लिए यमपुरी में जगह नहीं।

रुक्मिणी का कण्ठ-स्वर पहचानकर सीताराम को साहस हुआ। वह एकाएक अधिक अनुराग दिखाकर रुक्मिणी के साथ

फिर मेल करने की चेष्टा करने लगा। वह उसके पास जाकर उसकी देह से एकदम सटकर खड़ा हुआ और कोमल स्वर में कहने लगा—प्राणप्रिये, तुम इतने ही के लिए कोपमूर्ति बन बैठी हो? तुम्हारे मन में कब क्या हो जाता है, सो कुछ समझ में नहीं आता। अच्छा, कहो तो मङ्गला, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?

सीताराम जितना ही झूठा अनुराग दिखलाने लगा, रुक्मिणी उतनी ही क्रोधातुर होने लगी। उसके सिर से पैर तक सारा अङ्ग क्रोध से जलने लगा। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा, कोइ चीज़ उसके हाथ के पास न पड़ी। तब वह दाँत पीसकर बोली—ज़रा ठहरो, मैं अभी तुम्हारा सिर फोड़ती हूँ। यह कहकर थर थर काँपती हुई वह पत्थर का बटखरा ढूँढ़कर लाने के लिए दूसरे घर में गई। मौक़ा पाकर सीताराम तुरन्त उसके घर से निकल भागा। रुक्मिणी जब बाट हाथ में लिये उस घर में आई तब सीताराम को न देखकर सीताराम के नाम पर बार बार पत्थर का बाट ज़मीन पर पटकने लगी।

सीताराम ने मङ्गला के घर से बाहर आकर मन में सोचा—इसको युवराज के भागने का सारा हाल मालूम हो चुका है। अतएव यह सबको बिना बँधवाये न छोड़ेगी। मैं उस हत्यारिन का गला घोंटकर उसको मार क्यों न आया? जो हो, यशोहर में अब एक घड़ी के लिए भी रहना मेरे लिए अच्छा नहीं। मैं अभी भाग जाऊँ, इसी में बेहतरी है। सीताराम उसी रात को अपने बाल-बच्चों को साथ ले यशोहर छोड़ करके रायगढ़ भाग गया।

आग धीरे-धीरे बुझ गई। युवराज का अनिश्चित मृत्यु-संवाद प्रतापादित्य के कानों में पड़ा। प्रतापादित्य तुरन्त हवेली से निकल अपने न्यायालय में आकर बैठे। उन्होंने पहरेदारों को बुला भेजा। पहले मन्त्री आये, पीछे से दो एक सभासद भी। एक व्यक्ति ने कहा—जब आग ख़ूब ज़ोर से धधक रही थी तब

खिड़की से झाँककर मैंने युवराज को देखा था और कितने ही लोगों ने कहा—हमने युवराज के चिल्लाने की आवाज़ सुनी थी। एक आदमी ने उस घर से युवराज के हाथ की अधजली तलवार लाकर महाराज के आगे रख दी। प्रतापादित्य ने पूछा—चाचा कहाँ हैं? राजभवन में खोज होने पर कहीं उनका पता न लगा। किसी ने कहा—जिस वक्त आग लगी थी उस वक्त वे भा कारागार में थे। दूसरा बोल उठा—नहीं, रात में ही जब उन्होंने सुना कि क़ैदखाने में भी आग लगी है तब वे तुरन्त यहाँ से चल दिये। प्रतापादित्य जब सभा में बैठे हुए इस तरह लोगों का इज़हार सुन रहे थे, उसी समय कचहरी के द्वार पर मामूली तौर से कुछ कोलाहल हो उठा। एक औरत कचहरी के अन्दर प्रवेश करना चाहता थी, किन्तु दरबान उसे रोकता था। यह सुनकर प्रतापादित्य ने उसे घर के भीतर ले आने की आज्ञा दी। एक प्यादा रुक्मिणी को साथ ले आया। राजा ने उससे पूछा—तुम क्या चाहती हो? वह हाथ चमकाकर ख़ूब ज़ोर से बोली—मैं और कुछ नहीं चाहती। तुम्हारे जो ये पहरेदार हैं, इन सबको छः छः महीने जेलखाने में अच्छी तरह सड़ाकर, ताज़ी कुत्तों से नुचवाकर, इन लोगों की जान ली जाय—बस, यही मैं देखना चाहती हूँ। ये लोग क्या तुम्हें कुछ समझते हैं! तुम्हारा क्या ये लोग कुछ डर मानते हैं?

प्रतापादित्य—जो-जो घटना हुई है सो सब कहो।

रुक्मिणी—और क्या कहूँगी! तुम्हारे युवराज कल रात को बूढ़े राजा के साथ भाग गये।

प्रतापादित्य—जानती हो घर में आग किसने लगाई है?

रुक्मिणी—मैं भा न जानूँगी! वही जो तुम्हारा सीताराम है। तुम्हारे युवराज के साथ उसकी बड़ी प्रीति है। मानों उनके और कोई है ही नहीं। जो कुछ है सो सब सीताराम ही है। यह सब उसी का काम है। बूढ़ा राजा, सीताराम

और तुम्हारा युवराज—तीनों मिलकर वह काम कर गये हैं। साफ़-साफ़ मैंने कह दिया।

प्रतापादित्य बड़ी देर तक चुप रहे। पीछे पूछा, तुम्हें ये सब बातें कैसे मालूम हुईं? रुक्मिणी ने कहा—यह पूछने का काम क्या? मेरे साथ आदमी कर दो, मैं ख़ुद जाकर उन सबों को खोज निकालूँगी। तुम्हारे दरबार के नौकर बिलकुल भेड़ हैं। उनसे यह काम न हो सकेगा।

प्रतापादित्य ने रुक्मिणी के साथ आदमी कर देने की आज्ञा दी और पहरेदारों के लिए जो मुनासिब सज़ा समझी, दी। कचहरी से एक-एक कर सब लोग चले गये। सिर्फ़ मन्त्री और महाराज बैठे रहे। मन्त्री ने समझा कि महाराज मुझसे कुछ कहेंगे किन्तु महाराज ने कुछ न कहा। मन्त्री ने कुछ कहने के इरादे से कहा—महाराज! प्रतापादित्य ने कुछ न कहा। मन्त्री धीरे-धीरे उठकर वहाँ से चले गये।

उस दिन साँझ होने के कुछ पहले प्रतापादित्य ने एक मल्लाह की ज़बानी उदयादित्य के भागने की सच्ची ख़बर पाई। उसने नाव पर सवार उदयादित्य को नदी की राह से जाते देखा था। क्रमशः अन्यान्य लोगों के मुँह से भी उन्होंने उदयादित्य के भागने का ख़बर सुनी। रुक्मिणी के साथ जो लोग गये थे वे एक सप्ताह के बाद लौट आये और महाराज के निकट जाकर अर्ज़ किया कि युवराज को हम लोगों ने रायगढ़ में देखा है।

तब प्रतापादित्य ने मुख्तारख़ाँ नामक अपने एक पठान सेनाध्यक्ष को बुलाकर उसे कुछ आज्ञा दी। वह सलाम करके चला गया।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

उदयादित्य मुद्दत के बाद रायगढ़ आये हैं; किन्तु उन्हें पहले की तरह इस बार आनन्द न मिला। चिन्ता चित्त को दबाये हुए थी।

इसी से उनका जी कहीं नहीं लगता था। वे सोच रहे थे, दादाजी ने जो काम किया है उसका परिणाम अच्छा न होगा। पिताजी उन्हें यों ही छोड़ देंगे—यह सम्भव नहीं।

उदयादित्य को चिन्तित देखकर वसन्तराय उन्हें सुखी रखने के लिए-दिन रात जी-जान से यत्न करते थे। सितार बजाकर सुनाते थे, उदयादित्य को साथ लेकर इधर-उधर टहलते थे। उदयादित्य के पीछे प्रायः उनका राजकाज बन्द सा हो गया। वसन्तराय उदयादित्य को अपनी आँखों के सामने से अलग नहीं होने देते। उनके जी में खटका बना रहता था कि उदयादित्य फिर कहीं यशोहर न चले जायँ। इससे दिन-रात उन्हें अपनी आँखों की पुतली बनाये रहते थे और उनसे कहते—"भाई, तुम्हें अब उस पाषाण-हृदय की नगरी में न जाने दूँगा।"

एक दिन सबेरे वसन्तराय ने उदयादित्य का हाथ पकड़कर कहा—मैंने कल रात में एक बड़ा बुरा स्वप्न देखा है। मानों हमारे और तुम्हारे बीच में हमेशा के लिए जुदाई हो गई है।

उदयादित्य ने वसन्तराय के पैर पकड़ कर कहा—नहीं दादाजी, जुदाई अगर होगी भी तो हमेशा के लिए क्यों होगी।

वसन्तराय ने दूसरी ओर देखकर चिन्तित चित्त से कहा—अब हमेशा के ही लिए समझो। वृद्ध हो ही गया हूँ। कहो, अब और कितने दिन जीऊँगा?

गत रात्रि के दुःस्वप्न की कुछ कुछ ध्वनि अब भी वसन्तराय के हृदयरूपी गह्वर में प्रतिध्वनित हो रही थी। इसी से वे अन्यमनस्क होकर कुछ सोच रहे थे।

उदयादित्य कुछ देर चुप रहकर बोले—दादाजी, अगर हम लोगों में जुदाई हो ही जाय तो क्या होगा?

वसन्तराय ने उदयादित्य को गले लगाकर कहा—बेटा, जुदाई क्यों होगी? इस वृद्ध अवस्था में मुझे तिरस्कृत कर भाग न जाना।

उदयादित्य की आँखों में आँसू भर आये। वे बहुत अचम्भे में आ गये। उनके मन का अभिप्राय वसन्तराय ने कैसे समझ लिया। लम्बी साँस लेकर युवराज ने कहा—दादाजी, आपके पास मेरे रहने से आपके ऊपर आफ़त आयेगी।

वसन्तराय ने हँसकर कहा—कैसी आफ़त! इस उम्र में विपद् का भय मैं थोड़े ही करता हूँ। मृत्यु से बढ़कर तो कोई आफ़त नहीं। मृत्यु मेरे पड़ोस में आ चुकी है। वह रोज़-रोज़ मेरी खोज-ख़बर ले रही है। मैं अब उससे नहीं डरता। जो व्यक्ति जीवन के सारे झंझटों को झेलकर बुढ़ापे तक जीता बच रहा है, उसकी नाव किनारे लगकर डूब ही गई तो क्या?

उदयादित्य आज दिन भर वसन्तराय के साथ रहे। दिन भर पानी बरसता रहा। कुछ दिन बच रहा तब पानी बरसना बन्द हुआ। उदयादित्य उठकर खड़े हुए। वसन्तराय ने कहा—कहाँ जाते हो?

उदयादित्य—ज़रा घूम आऊँ।

वसन्तराय—आज घूमने न जाओ।

उदयादित्य—क्यों, दादाजी!

वसन्तराय उदयादित्य से लिपट गये और बोले—आज तुम घर से बाहर न निकलो, आज तुम मेरे पास रहो।

उदयादित्य—दादाजी, मैं अधिक दूर न जाऊँगा, अभी आता हूँ।

उन्हें ड्योढ़ी से अकेले बाहर जाते देखकर एक प्यादे ने कहा—महाराज, मैं आपके साथ चलता हूँ।

युवराज—नहीं, कोई ज़रूरत नहीं।

प्यादे ने कहा—महाराज के हाथ में कोई अस्त्र नहीं है।

युवराज—अस्त्र की क्या आवश्यकता है?

ड्योढ़ी से कुछ दूर एक बहुत लम्बा-चौड़ा मैदान था; उसी मैदान में उदयादित्य पहुँचे। वे उस समय अकेले थे। क्रमशः सूर्य का प्रकाश मन्द होने लगा। उनके मन में न मालूम क्या-क्या

चिन्ताएँ उदित हुईं। युवराज अपने इस अवलम्बहीन और उद्देश्य-हीन जीवन की बातें सोचने लगे। उम्र अभी कुछ ही बीती है, जीवन का अधिक भाग पड़ा ही है। ठिकाने की जगह न मिलने से इतना बड़ा भविष्य समय कैसे कटेगा। इसके बाद विभा का स्मरण हो आया। विभा अब कहाँ है? इतने दिन तक मैं ही उसके सुख के प्रकाश को रोके बैठा था। क्या अब वह सुख से समय न बिताती होगी? विभा को मन ही मन उन्होंने बहुत आशीर्वाद दिया।

धूप के वक्त चरवाहों के विश्राम करने के लिए उस मैदान में एक जगह पीपल, बड़, खजूर और सुपारी आदि पेड़ों का एक छोटा सा जङ्गल था। युवराज उस जङ्गल के अन्दर घुसे तब साँझ हो चुकी थी। कुछ-कुछ अँधेरा सा हो गया था। युवराज का विचार आज भागने का था। उसी सङ्कल्प के सम्बन्ध में वे मन ही मन सोच रहे थे। वसन्तराय जब सुनेंगे कि उदयादित्य भाग गये हैं तब उनकी क्या दशा होगी। तब वे हृदय में चोट खाकर करुण भरे स्वर से बोलेंगे—अयँ, उदय मेरे पास से भाग गया!—उनकी वह काल्पनिक आकृति मानों उदयादित्य के सामने स्पष्ट हो गई।

इसी समय एक औरत कठोर स्वर में बोल उठी—यह देखो, इसी जगह तुम लोगों के युवराज हैं—इसी जगह।

दो सैनिक हाथ में मशालें लिये हुए युवराज के पास आ खड़े हुए। देखते-देखते और भी कितने ही सिपाही उन्हें घेरकर खड़े हो गये। तब उस औरत ने युवराज के पास आकर कहा—मुझे पहचानते हो? एक बार इस तरफ़ ध्यान से देखो! एक बार इधर नज़र करो। युवराज ने मशाल की रोशनी में देखा, रुक्मिणी है। सैनिकों ने रुक्मिणी का व्यवहार देख झिड़ककर कहा—दूर हो यहाँ से। वह उस पर ज़रा भी ध्यान न देकर कहने लगी—यह सब किसने किया है? मैंने ही किया है। मैंने ही यह सब किया है। यहाँ इन सैनिकों को कौन लाया है? मैं लाई हूँ। मैंने तुम्हारे हेतु

इतना किया, और तुम—युवराज घृणा करके रुक्मिणी की ओर पीठ करके खड़े हो गये। सैनिकों ने रुक्मिणी को खींचकर ज़बरदस्ती वहाँ से अलग कर दिया। तब मुख़्तारख़ाँ सामने आकर युवराज को सलाम करके खड़े हुए। युवराज ने विस्मित होकर कहा—मुख़्तारख़ाँ, क्या हाल है?

मुख़्तारख़ाँ ने विनयपूर्वक कहा—हुज़ूर, महाराज की आज्ञा के अनुसार हम लोग यहाँ आये हैं।

युवराज ने पूछा—उनकी क्या आज्ञा है?

मुख़्तारख़ाँ ने प्रतापादित्य की दस्तख़ती चिट्ठी निकालकर युवराज के हाथ में दी।

युवराज ने पढ़कर कहा—इसके लिए इतनी सेना की क्या ज़रूरत थी? मुझे एक आज्ञापत्र लिखकर भेज देते तो मैं उनके पास हाज़िर हो जाता। मैं तो आप ही जा रहा था। जाने की सब बातें स्थिर कर चुका हूँ। तब देर करने का प्रयोजन क्या? अभी चलो। अभी यशोहर चलता हूँ।

मुख़्तारख़ाँ ने कहा—अभी तो हम लोग न जा सकेंगे।

युवराज ने डरकर कहा—क्यों? मुख़्तारख़ाँ ने कहा—महाराज का एक और हुक्म है। उसको बिना पूरा किये कैसे जा सकूँगा!

युवराज ने भीत स्वर में पूछा—और क्या हुक्म है?

मुख़्तारख़ाँ ने कहा—महाराज ने रायगढ़ के राजा को मार डालने का हुक्म दिया है।

युवराज चौंककर बोले—नहीं, नहीं, ऐसा हुक्म उन्होंने नहीं दिया है। झूठ बात है।

मुख़्तारख़ाँ ने कहा—युवराज साहब, मैं आपसे झूठ नहीं कहता। मेरे पास महाराज की दस्तख़ती चिट्ठी है।

युवराज ने सेनापति का हाथ पकड़कर बड़ी व्यग्रता से कहा—मुख़्तारख़ाँ, तुमने उस चिट्ठी का मतलब नहीं समझा। महाराज ने

यह आज्ञा दी है कि अगर उदयादित्य को वे हाज़िर न कर सकें तो उनको—जब मैं ख़ुद हाज़िर हूँ तब उन्हें क्यों—मुझे अभी ले चलो, मैं चलने को तैयार हूँ। मुझे बाँधकर ले चलो। ज़रा भी देर न करो।

मुख़्तारख़ाँ ने कहा—मैं उस चिट्ठी का मतलब बखूबी समझता हूँ। महाराज ने बड़ी कड़ाई के साथ आज्ञा दी है।

युवराज ने अधीर होकर कहा—तुम ज़रूर भूलते हो। उनकी ऐसी आज्ञा नहीं होगी। अभी यशोहर चला। मैं महाराज को तुम लोगों के विषय में समझा दूँगा। वे यदि दूसरी बार आज्ञा देंगे तो जो तुम्हारे जी में आवे सो करना।

मुख़्तारख़ाँ ने हाथ जोड़कर कहा—युवराज साहब, माफ़ कीजिए, मैं महाराज की आज्ञा नहीं टाल सकता।

युवराज ने अत्यन्त अधीर होकर कहा—मुख़्तार, समझ रक्खो, किसी समय यशोहर के सिंहासन का अधिकार मुझे ही मिलेगा। मेरी बात मानो, और मुझे ख़ुश करो।

मुख़्तार कुछ जवाब न देकर चुप खड़ा रहा।

युवराज का चेहरा उदास पड़ गया। उनका सारा शरीर पसीना-पसीना हो गया। उन्होंने सेनापति का हाथ ख़ूब ज़ोर से पकड़कर कहा—मुख़्तारख़ाँ! वृद्ध, निर्दोष, धर्मात्मा वसन्तराय का ख़ून करोगे तो नरक में भी तुम्हें ठहरने को जगह न मिलेगी।

मुख़्तारख़ाँ ने कहा—मालिक की आज्ञा का पालन करने में पाप नहीं होता।

उदयादित्य ने कड़ककर कहा—झूठ; कौन कहता है कि पाप नहीं होता। जिस धर्मशास्त्र में ऐसी बात लिखी है वह धर्मशास्त्र नहीं। मुख़्तार, तुम सच मानो, पाप की आज्ञा मानने में ज़रूर पाप होता है।

मुख़्तार कुछ न बोला।

उदयादित्य चारों ओर देखकर बोले—अच्छा, मुझे छोड़ दो, मैं लौट जाता हूँ। तुम अपनी सेना को लेकर वहाँ आओ। मैं

तुमस युद्ध करने को कहता हूँ। वहाँ रणभूमि में विजय प्राप्त करके तब आज्ञा पालन करना।

मुख़्तार कुछ न बोला। उसके साथ की सेना युवराज के बहुत पास आकर चारों ओर से उन्हें घेरकर खड़ी हो गई। युवराज ने जब कोई उपाय न देखा तब उस अन्धकार में ख़ूब ज़ोर से चिल्ला उठे—दादाजी, सावधान! इस शब्द से सारा वन काँप उठा। मैदान की सीमा तक जाते-जाते वह आवाज़ ख़तम हो गई। सेना ने उदयादित्य को पकड़ रक्खा। उदयादित्य फिर ज़ोर से चिल्ला उठे—दादाजी, सावधान! एक मुसाफ़िर मैदान की राह से जा रहा था। शब्द सुनकर वह आदमी वहाँ गया और पूछा—क्या है? उदयादित्य ने फ़ौरन कहा—जाओ, जाओ, जल्दी दौड़कर जाओ; महाराज को सावधान कर दो। सेना ने उस मुसाफ़िर को भी तुरन्त गिरफ़्तार कर लिया। उस मैदान से और जो कोई जा रहे थे उन्हें भी सेना ने घेर रक्खा।

कुछ सेना उदयादित्य को घेरे रही और शेष सेना को साथ लेकर मुख़्तारख़ाँ भेस बदलकर और अस्त्र-शस्त्र छिपाकर मामूली लिबास में गढ़ की ओर चला। गढ़ में जाने के कई रास्ते थे। उन लोगों ने अलग-अलग होकर भिन्न-भिन्न रास्तों से गढ़ के भीतर प्रवेश किया।

दिन डूब गया था। वसन्तराय बैठकर सायङ्काल का नित्य-कृत्य कर रहे थे। उधर देव-मन्दिर में सन्ध्या-आरती के शङ्ख, घड़ी-घण्टे बज रहे हैं। बड़े विशाल राजभवन में कहीं किसी तरह का कोलाहल नहीं। चारों ओर शान्ति छाई है। वसन्तराय के नियमानुसार अधिकांश नौकरों ने सन्ध्या समय कुछ देर को छुट्टी पाई है।

सन्ध्यावन्दन अभी कर ही रहे थे, इतने में वसन्तराय ने एका-एक देखा, उनके घर में मुख़्तारख़ाँ घुस आया। वसन्तराय हड़बड़ाकर बोल उठे—ख़ाँ साहब, इस घर में न आओ। मैं अभी पूजा करके आता हूँ।

मुख्तारख़ाँ घर से निकलकर द्वार पर खड़ा हो रहा। वसन्तराय ने सन्ध्या-पूजा समाप्त करके झटपट बाहर आकर मुख्तारख़ाँ के कन्धे पर हाथ रखकर पूछा—ख़ाँ साहब, अच्छे तो हो?

मुख्तारख़ाँ ने सलाम करके संक्षेप में कहा—जी हाँ, महाराज!

वसन्तराय ने कहा—कुछ खाना-पीना हुआ है?

मुख्तारख़ाँ—जी हाँ।

वसन्तराय—तो आज तुम्हारे यहाँ रहने का बन्दोबस्त कर देता हूँ।

मुख्तारख़ाँ ने कहा—जी नहीं, कोई ज़रूरत नहीं। काम करके अभी जाना होगा।

वसन्तराय—नहीं, सो न होगा; आज तुम्हें न जाने दूँगा। आज तुमको यहाँ रहना होगा।

मुख्तारख़ाँ—नहीं, महाराज, बहुत जल्द यशोहर जाना होगा।

वसन्तराय ने पूछा—क्यों, ऐसा कौन सा ज़रूरी काम है? कहो, प्रताप तो अच्छी तरह हैं?

मुख्तारख़ाँ—जी हाँ, वे अच्छी तरह हैं।

वसन्तराय—तब तुम्हारा वह कौन सा ज़रूरी काम है? फ़ौरन कह सुनाओ। जी में उद्वेग हो रहा है। प्रताप के ऊपर कुछ सङ्कट तो नहीं आ पड़ा है?

मुख्तारख़ाँ—जी नहीं, उनके ऊपर कोई सङ्कट नहीं आया है। महाराज की आज्ञा का पालन करने आया हूँ।

वसन्तराय ने पूछा—क्या आज्ञा, कह सुनाओ।

मुख्तारख़ाँ ने एक आज्ञापत्र निकालकर वसन्तराय के हाथ में दिया। वसन्तराय चिराग़ की रोशनी में जाकर पढ़ने लगे। इतने ही में सेना ने दरवाज़े को घेर लिया। जब पत्र पढ़ चुके तब वसन्तराय ने धीरे-धीरे मुख्तारख़ाँ के निकट आकर पूछा—यह क्या प्रताप ही ने लिखा है?

मुख्तारख़ाँ—जी हाँ।

वसन्तराय ने पूछा—ख़ाँ साहब, क्या ये प्रताप के ही अक्षर हैं?

मुख़्तारख़ाँ—जी हाँ, महाराज!

वसन्तराय रोकर बोले—ख़ाँ साहब, प्रताप को मैंने अपने हाथ से पाल-पोसकर बड़ा किया है। वह जब बिलकुल बच्चा था, मैं उसे दिन-रात गोद में लिये रहता था। प्रताप जब बड़ा हुआ, उसका ब्याह कराया, उसे सिंहासन पर बैठाया। उसका सन्तान को गोद खेलाया। ख़ाँ साहब, उसी प्रताप ने आज अपने हाथ से ऐसी बात लिखी!

मुख़्तारख़ाँ सिर नीचा करके चुपचाप खड़ा रहा।

वसन्तराय ने पूछा—बेटा कहाँ है? उदय, उदय कहाँ है?

"वे गिरफ़्तार हुए हैं। महाराज उनका मुक़दमा सुनेंगे।"

वसन्तराय बोल उठे—उदय गिरफ़्तार हुआ है? सच कहो ख़ाँ साहब, क्या मैं उसे एक बार देख न सकूँगा?

मुख़्तारख़ाँ ने कहा—जी नहीं, महाराज का ऐसा हुक्म नहीं।

वसन्तराय ने आँखों में आँसू भरकर मुख़्तारख़ाँ का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—ख़ाँ साहब, एक बार उदय से मिलने न दोगे?

मुख़्तारख़ाँ ने कहा—मैं तो महाराज के हुक्म का पाबन्द हूँ।

वसन्तराय ने दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—इस संसार में किसी के दया-धर्म नहीं है। आओ अपने महाराज की आज्ञा का पालन करो।

तब मुख़्तारख़ाँ ने झुककर सलाम किया और हाथ जोड़कर कहा—महाराज, ताबेदार को माफ़ कीजिए। मैं सिर्फ़ मालिक के हुक्म की तामील करता हूँ। मेरा कोई क़सूर नहीं।

वसन्तराय ने कहा—नहीं साहब, तुम्हारा क़सूर क्या? तुम्हारा कोई क़सूर नहीं। तुम्हें क्या माफ़ करूँ? यह कहकर मुख़्तारख़ाँ के गले लगकर कहा—प्रताप से जाकर कहना कि मैं उसे आशीर्वाद

देकर मरा। और देखो ख़ाँ साहब, मरने के वक्त मैं उदय का भार तुम्ह सौंपता हूँ। वह बेक़सूर है। झूठे सच्चे मुक़दमे से उसे कष्ट न हो।

वसन्तराय आँखें मूँदकर धरती पर बैठ गये। दाहने हाथ से माला फेरते हुए बोले—साहब, बस, अब देर न करो।

मुख्तारख़ाँ ने अबदुल्ला को पुकारा। अबदुल्ला नङ्गी तलवार लिये आ गया। मुख़्तारख़ाँ वहाँ से हट गया। घड़ी बीतते न बीतते लोहू से भरी हुई तलवार हाथ में लिये अबदुल्ला घर से बाहर निकल आया। घर में लोहू की धार बहने लगी।

——

उनतीसवाँ परिच्छेद

मुख्तारख़ाँ अधिकांश सेना को रायगढ़ में रखकर उदयादित्य को साथ ले तुरन्त यशोहर को रवाना हुआ। रास्ते में दो दिन तक उदयादित्य ने अन्न को हाथ से छुआ भी नहीं। किसी के साथ कुछ बातचीत नहीं की। वे केवल सोचते रहे। तीसरे दिन वे बँधुवे की तरह प्रतापादित्य के सामने लाये गये। प्रतापादित्य ने उनको हवेली के अन्दर एक कोठरी के भीतर बन्द करा दिया। प्रतापादित्य को पास आते देखकर मानों उदयादित्य का सारा शरीर काँप उठा। घृणा के मारे मानों उनके सारे शरीर का चमड़ा सिकुड़ गया। वे अपने पिता का मुँह नहीं देख सके।

प्रतापादित्य ने गम्भीर स्वर में कहा—तुम्हारे लिए कौन सी सज़ा तजवीज़ की जाय?

उदयादित्य ने धीरता के साथ कहा—आप जो मुनासिब समझें।

प्रतापादित्य ने कहा—तुम मेरे इस राज्य के अधिकारी होने योग्य नहीं।

उदयादित्य—आप ठीक कहते हैं।

प्रतापादित्य भी यही चाहते थे। उन्होंने कहा—तुम जो कह रहे हो, यह सच्चे दिल से कह रहे हो, इसकी प्रतीति मुझे कैसे हो?

उदयादित्य ने कहा—मैं भाग्यहीन ज़रूर हूँ, पर आज तक मैं स्वार्थवश कभी झूठ नहीं बोला। आपको यदि मेरा विश्वास न हो तो मैं भगवती के चरण छूकर शपथ करूँगा। आपके राज्य की सूई के अग्रभाग के बराबर भी ज़मीन मैं न लूँगा। समरादित्य ही आपके राज्य का उत्तराधिकारी होगा।

प्रतापादित्य ने प्रसन्न होकर कहा—अच्छा, तुम क्या चाहते हो?

उदयादित्य ने कहा—महाराज, मैं और कुछ नहीं चाहता, आप मुझे पिँजड़े में बन्द पशु की तरह चौकी-पहरे में न रक्खें। मुझे आप छोड़ दें। मैं अभी काशी चला जाऊँगा। एक और प्रार्थना यह है कि मुझे आप कुछ द्रव्य दीजिए। मैं वहाँ दादाजी के नाम से एक अतिथिशाला और एक मन्दिर बनवाऊँगा।

प्रतापादित्य ने कहा—अच्छा, इसे मैं स्वीकार करता हूँ।

उसी दिन उदयादित्य ने मन्दिर में जाकर प्रतापादित्य के सामने शपथ की—माँ कालिके, मैं तुम्हारा पाँव छूकर शपथ करता हूँ—जीते-जी यशोहराधीश के राज्य की तिल मात्र भी भूमि अपनी समझकर कभी ग्रहण न करूँगा, यशोहर के सिंहासन पर न बैठूँगा और यशोहर के राजदण्ड का कभी नाम न लूँगा। यदि ऐसा कभी करूँ तो दादाजी के मारने का सारा पाप मुझे ही हो।

महारानी ने जब सुना कि उदयादित्य काशी जा रहे हैं, तब उन्होंने उदयादित्य के पास आकर कहा—बेटा उदय, मुझे भी अपने साथ लेते चलो।

उदयादित्य ने कहा—क्यों माँ, तुम्हारे समरादित्य हैं, तुम्हारे और सब लोग यहीं रहेंगे। तुम अगर यहाँ से जाओगी तो यशोहर में राजलक्ष्मी न रहेगी।

रानी ने रोकर कहा—बेटा, तुम इसी उम्र में सुख-सम्पत्ति छोड़कर चले जा रहे हो, मैं किस बिरते सुख के लिए यहाँ रहूँगी! यह राजपाट लेकर मैं क्या करूँगी? सब संसारी सुख छोड़कर तुम संन्यासी होकर रहोगे। वहाँ तुम्हारी देख-रेख कौन करेगा? तुम्हारे बाप का हृदय पत्थर का है। मैं तुम्हें न छोड़ सकूँगी।

उदयादित्य ने माँ का हाथ पकड़कर आँसू भरी हुई आँखों से कहा—माँ, तुम तो जानती ही हो, यहाँ मेरे रहने से पग-पग में सन्देह का कारण बना रहेगा। तुम निश्चिन्त हो, मैं विश्वनाथ की शरण में जाकर सुख से रहूँगा।

उदयादित्य ने विभा के पास जाकर कहा—विभा, मेरी प्यारी बहन, मैं काशी जाने के पहले तुमको तुम्हारी ससुराल अपने साथ ले जाऊँगा। मेरा यही एकमात्र मनोरथ है।

विभा ने उदयादित्य से पूछा—दादाजी कैसे हैं?

"अच्छी तरह हैं" कहकर उदयादित्य झटपट वहाँ से चले गये।

—

तीसवाँ परिच्छेद

उदयादित्य विभा को साथ लेकर चन्द्रद्वीप जाने का उद्योग करने लगे। विभा अपनी माँ के गले से लिपटकर खूब रोई। हवेली में जितनी बूढ़ी औरतें थीं, सब विभा को अनेक प्रकार की शिक्षाएँ देने लगीं।

रानी ने उदयादित्य को बुलाकर कहा—विभा को तो ले जा रहे हो। अगर वे लोग इसकी अवहेला करें तो?

उदयादित्य ने चौंककर कहा—क्यों माँ, वे लोग इसकी अवहेला क्यों करेंगे?

रानी—कौन जाने, अगर वे विभा के ऊपर नाराज़ हों ?

उदयादित्य—नहीं माँ, विभा बड़ी भोली-भाली लड़की है। उसके ऊपर क्या वे कभी नाराज़ हो सकते हैं ?

रानी ने रोकर कहा—बेटा, विभा को बड़ी सावधानी से ससुराल पहुँचा आओ। यदि वे उसका अपमान करेंगे तो उसके जीवन में सन्देह है।

बिदा होने के समय उदयादित्य और विभा ने माँ को प्रणाम किया। यात्रा में किसी प्रकार का अशुभ न हो, यह सोचकर रानी उस समय आँसुओं को रोके रहीं। उन दोनों के वहाँ से जाते ही वे धरती पर लोट-लोटकर रोने लगीं। इसके बाद उदयादित्य और विभा दोनों पिता को प्रणाम कर आये। राजभवन में जितने श्रेष्ठ सम्बन्धी थे, सबको उन्होंने प्रणाम किया। उदयादित्य ने समरादित्य को गोद में उठाकर उसका मुँह चूमा और आशीर्वाद दिया। राज-भवन के नौकर उदयादित्य को जी-जान से मानते थे। वे सब आकर उदयादित्य को प्रणाम करके रोने लगे। आखिर उदयादित्य और विभा दोनों ने मन्दिर में जाकर देवता को प्रणाम करके यात्रा की।

उदयादित्य जब यशोहर की सीमा को पार कर गये तब उन्होंने एक ठण्डी साँस ली। वे शोक, विपत्ति और अत्याचार की नाट्य-शाला से निकल आये। उदयादित्य ने निश्चय किया कि लौटकर फिर कभी यहाँ न आऊँगा। एक बार उन्होंने पीछे फिरकर देखा। अत्याचार से भरा हुआ अत्यन्त कठोर यशोहर का राजमहल आकाश में सिर उठाये राक्षस की तरह खड़ा है।

पूर्व की ओर आसमान में सफ़ेदी छा गई है। देखते ही देखते सफ़ेदी की जगह अरुणिमा छा गई। थोड़ी ही दूर पर नदी के पूर्व किनारे के जङ्गलों के भीतर से सुनहरी लकीरें निकलती हुई दिखाई देने लगीं। पेड़ों के ऊपरी भाग पर उन लकीरों की आभा पड़ने से एक अपूर्व शोभा प्रकट होने लगी। मल्लाहों ने ख़ुशी का गीत गाते

हुए पाल तानकर नाव खोल दी। प्रकृति की इस प्रभातकालिक शोभा को देखकर उदयादित्य का चित्त पक्षियों के साथ स्वाधीनता का गीत गाने लगा। उदयादित्य ने अपने मन में कहा—हे ईश्वर, मैं जन्म-जन्म में इसी तरह निर्द्वन्द्व होकर प्रकृति की रमणीय भूमि में स्वाधीनतापूर्वक विचरण कर सकूँ और सहृदय सज्जनों के साथ रहकर सुख से समय बिता सकूँ।

माँझियों का गान और जलप्रवाह का कलकल शब्द सुनते हुए बहन-भाई दोनों आगे बढ़े। विभा के हृदय में आनन्द की तरङ्गें लहरा रही थीं। हृदय का भाव उसके मुँह और आँखों से प्रकट हो रहा था। मानों इतने दिनों के बाद उसने दुःस्वप्न से जागकर सुख का संसार देखा है। दुःस्वप्न का भय मानों उसके हृदय से निकल गया है और वह स्वस्थ हो बैठी है। विभा जा रही है। किसके पास जा रही है? इतने दिनों से जिसका वह ध्यान कर रही थी, जो उसके प्रेम का एकमात्र विश्राम-स्थान है, उसी के पास जा रही है। मारे उमङ्ग के उसका सारा शरीर पुलकित हो रहा है। वह चारों ओर स्नेह-समुद्र देख रही है, मानों उसी स्नेह-समुद्र में डूबी हुई है। उदयादित्य विभा को अपने पास बुलाकर उसे कोमल कण्ठस्वर में कई प्रकार की कथा-कहानी सुनाने लगे। विभा ने जो सुना, वही उसे अच्छा लगा।

रामचन्द्र राय के राज्य में नाव आ पहुँची। चारों ओर देखकर विभा के मन में उस आनन्द का उदय हुआ जो इसके पहले कभी न हुआ था। चारों ओर की अपूर्व शोभा देखकर उसका चित्त विकसित हो उठा। विभा के जी में आया, एक बार प्रजा को अपने पास बुलाकर राजा का वृत्तान्त पूछें। प्रजा को देखकर उसके मन में एक अपूर्व स्नेह का उदय हुआ। उसकी दृष्टि में सभी अच्छे जान पड़े। कहीं-कहीं दो-एक दरिद्र देख पड़े। विभा ने मन ही मन कहा—हाय, इसकी ऐसी दशा क्यों है? मैं महल के भीतर जाकर इसे बुलवा भेजूँगी और ऐसा करूँगी जिसमें

इसका दुःख दूर हो। वह सभी को अपना समझने लगी। इस राज्य में लोगों का दुखी रहना उसे सह्य न हुआ। विभा के जी में यह होने लगा कि प्रजा उसके पास एक बार आकर उसे माँ कहकर पुकारे और उसके आगे अपना दुःख निवेदन करे और वह उसका दुःख दूर करे।

राजधानी के समीप एक गाँव में उदयादित्य ने नाव लगाई। उन्होंने निश्चय किया कि अपने आने का हाल राजभवन में कहला भेजेंगे और वे लोग आकर सम्मान-पूर्वक इन्हें ले जायँगे। जब नाव लगाई गई तब दिन थोड़ा रह गया था। उदयादित्य ने सोचा कि कल सबेरे आदमी भेजना अच्छा होगा। विभा की इच्छा थी, आज ही उनके पास ख़बर भेजी जाय।

इकतीसवाँ परिच्छेद

आज चन्द्रद्वीप के सब लोग उलझे हुए हैं। चारों ओर बाजे बज रहे हैं, मानों गाँव में कोई विशेष उत्सव हो रहा है। एक तो अपने हृदय के भविष्य आनन्द से विभा आप ही अधीर हो रही है। उस पर बाजों का मधुर शब्द सुनकर उसके हृदय में आनन्द की तरङ्ग लहराने लगी। पीछे कहीं यह आनन्दातिरेक उदयादित्य के सामने प्रकट न हो जाय, इस कारण वह बड़े कष्ट से अपने प्रफुल्ल मुख का भाव और हृदय की उमङ्ग को छिपाये हुए है। उदयादित्य नदी के किनारे कुछ उत्सव का लक्षण देखकर यह जानने के लिए गाँव में घूमने गये कि कैसा उत्सव हो रहा है।

कुछ देर के बाद एक आदमी ने नाव के निकट किनारे पर आकर पूछा—यह नाव किसकी है? नाव पर से दो-एक नौकर बोल उठे—अरे कौन? राममोहन? आओ, आओ! राममोहन

तुरन्त नाव पर आया। विभा अकेली नाव में बैठी है। वह राममोहन को देखकर मारे खुशी के अधीर होकर बोली—मोहन।

राममोहन—हाँ माता।

राममोहन ने विभा का आनन्द से परिपूर्ण प्रसन्न मुख देखकर उदासी के साथ कहा—माँ, तुम इतने दिनों के बाद आज यहाँ आईं ?

विभा—हाँ, मोहन, महाराज को क्या मेरे आने की ख़बर मिल गई है ? क्या तुम मुझे यहाँ से ले चलने के लिए आये हो ?

राममोहन—नहीं, इतनी जल्दी क्या है ? आज यहीं रहो, दूसरे दिन तुम्हें ले जाऊँगा।

राममोहन का भाव देखकर विभा एकदम मलिन हो गई, बोली—क्यों मोहन, आज क्यों न जाऊँ ?

राममोहन—आज साँझ हो गई, आज ठहरो।

विभा ने बहुत डरकर कहा—मोहन, सच सच कहो, क्या मामला है ?

राममोहन से न रहा गया। किसी बात को हृदय में छिपा रखने का उसे अभ्यास नहीं था। वह उस जगह बैठ गया और रो-रोकर कहने लगा—माँ, आज तुम्हारे इस राज्य में तुम्हारे लिए जगह नहीं। तुम्हारे इतने बड़े राजभवन में तुम्हारे लिए अब एक घर तक नहीं। आज महाराज दूसरा ब्याह कर रहे हैं।

विभा का मुँह एकदम पीला पड़ गया। मानों उसके माथे पर बिजली गिरी। राममोहन कहने लगा—माँ, जब तुम्हारा यह अधम दास तुमको बुलाने गया तब तुम नहीं आईं। तब तुमने निठुराई के साथ मुझे लौटा दिया। महाराज के सामने कुछ कहने लायक़ मेरा मुँह न रहा। मेरी छाती फट गई तब भी मैं कुछ बोल न सका।

यह सुनकर विभा की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उसका सिर घूमने लगा। वह उसी जगह मूर्च्छित हो गिर पड़ी।

राममोहन ने तुरन्त विभा के मुँह और आँखों पर पानी के छींटे दिये। कुछ देर के बाद विभा को होश हुआ और वह उठ बैठी। विभा की आँखों में सारा संसार सूना सा दिखाई देने लगा। स्वामी के राज्य में आकर, राजधानी के पास पहुँचकर और राजभवन के द्वार तक पहुँचकर पतिसुख की प्यासी विभा हताश हो गई। उसके सारे सुखों की आशा मृगतृष्णा सी हो गई।

विभा ने बड़ी व्याकुलता से कहा—मोहन, उन्होंने जो मुझे बुला भेजा था, सो मेरे आने में क्या बहुत विलम्ब हुआ है?

मोहन—हाँ, विलम्ब होने ही से—

विभा ने अधीर होकर कहा—क्या अब वे क्षमा न करेंगे?

मोहन—अब वे क्या क्षमा करेंगे।

"मोहन, मैं सिर्फ़ एक बार उन्हें देखूँगी"—यह कहकर विभा ज़ोर से रो उठी।

राममोहन ने अपनी आँखों के आँसू पोंछकर कहा—माँ, आज ठहर जाओ।

विभा ने कहा—नहीं, नहीं, मैं आज ही उन्हें देख आऊँगी।

राममोहन—अच्छा, युवराज को उधर से लौट आने दो।

विभा—नहीं, मैं अभी चलूँगी।

विभा को यह ख़याल हुआ कि उदयादित्य यह वृत्तान्त सुनकर शायद पीछे अपमान के भय से मुझे न जाने दें।

राममोहन—अच्छा तो एक पालकी ले आता हूँ।

विभा—पालकी क्या होगा? मैं क्या रानी हूँ जो मेरे लिए पालकी और परदा चाहिए! मैं एक साधारण प्रजा की तरह, एक भिखारिन की तरह, जाऊँगी। मुझे पालकी से क्या प्रयोजन?

राममोहन—मैं अपने जीते-जी यह कैसे देख सकूँगा?

विभा अधीर होकर बोली—मोहन, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। मेरे जाने में विघ्न न करो। विलम्ब हो रहा है।

राममोहन ने दुखी होकर कहा—अच्छा, चलो।

विभा साधारण स्त्री की तरह चली। नाव पर जो नौकर थे उन लोगों ने आकर कहा—यह क्या! सरकार, तुम इस तरह साधारण भेस में कहाँ जा रही हो?

राममोहन—यह तो इन्हीं का राज्य है। जहाँ इनके जाने की इच्छा होगी, जा सकती हैं।

नौकर लोग विभा के जाने में रोक-टोक करने लगे। राममोहन ने उनको डपटकर रोक दिया।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

चारों ओर अपार भीड़ लगी है। अगर पहले विभा इस तरह भीड़ में आती तो वह लाज से मर जाती, किन्तु आज मानों वह अन्धी बन गई है। वह जो कुछ देख रही है और सुन रही है उसे वह स्वप्नवत् समझ रही है, उस पर उसका ज़रा भी ध्यान नहीं है। मानों ये सब उसके लिए कुछ नहीं के बराबर हैं।

जब विभा भीड़ से निकलकर राजभवन के सदर फाटक के पास आई तब एक दरबान ने उसे भीतर न जाने दिया, उसका हाथ पकड़कर रोक दिया। तब विभा के पैरों के नीचे से मानों धरती हट गई। वह चारों ओर लोगों को देखकर मारे लज्जा और ग्लानि के मर गई। उसका हृदय व्याकुल हो उठा। उसका घूँघट खुल पड़ा। कुछ देर में जब उसे होश हुआ तब तुरन्त उसने मुँह पर घूँघट डाला। राममोहन आगे-आगे जा रहा था, पीछे की ओर घूमकर देखा कि विभा द्वार पर खड़ी है, दरबान उसे आने नहीं देता, तब उसने दरबान को ज़ोर से धमकाया। पास ही फ़र्नांडिज़ था। उसने आकर दरबान की अच्छी तरह ख़बर ली।

को बात सुनकर व [illegible]

ममता दिखलाने से पीछे लोग मुझे हँसेंगे।

विभा के माथे पर मानों एक ही बार सैकड़ों बिजलियाँ टूट पड़ीं। वह शर्म के मारे सिमट गई। आँखें मूँदकर वह मन ही मन कहने लगी—माँ वसुन्धरे, तुम दो खण्ड होकर फट पड़ो तो मैं उसमें धँसकर मर जाऊँ। उसने व्याकुल होकर चारों ओर देखा। एक बार राममोहन के मुँह को ओर भी कातर दृष्टि से देखा।

राममोहन दौड़कर आया, और खूब जोर से रमाई का गला पकड़कर उसे घर से निकाल दिया।

राजा क्रुद्ध होकर बोले—राममोहन, तुम बेअदबी करते हो!

राममोहन ने क्रोध से काँपते-काँपते कहा—महाराज, मैंने बेअदबी की है। आपकी रानी को, मेरी मालकिन को आपके ही

[illegible]। उदयादित्य क साथ विभा काशी चली गई। वहाँ पर वह दान-पुण्य करके और देवताओं की आराधना करके अपने भाई की सेवा में रहकर जीवन बिताने लगी। राममोहन जब तक जीता रहा, उन्हीं लोगों के साथ रहा। सीताराम भी अपने बाल-बच्चों को साथ ले काशी में आया और उदयादित्य का आश्रित हुआ।

चन्द्रद्वीप में जिस हाट (पेंठ) के सामने विभा की नाव लगी थी, उसका नाम आज तक इस नाम से चला जा रहा है—

बहू रानी की हाट

——